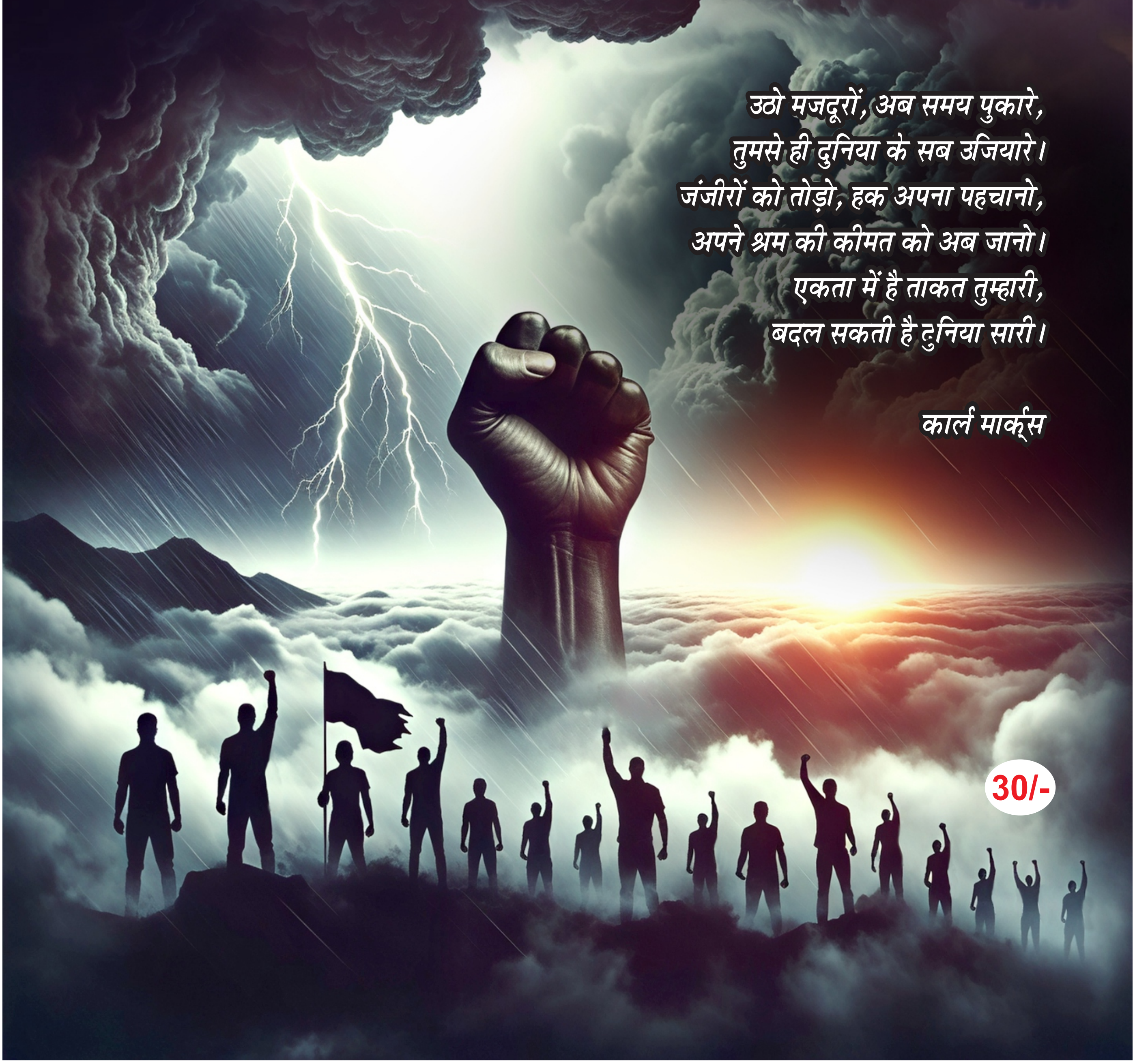
वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

मई – जून 2026

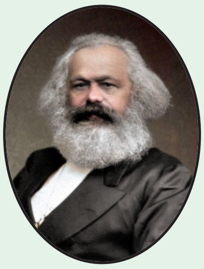


उठो मजदूरों, अब समय पुकारे,
तुमसे ही दुनिया के सब उजियारे।
जंजीरों को तोड़ो, हक अपना पहचानो,
अपने श्रम की कीमत को अब जानो।
एकता में है ताकत तुम्हारी,
बदल सकती है दुनिया सारी।

कार्ल मार्क्स

30/-

कार्ल मार्क्स



"मजदूर वर्ग इतिहास का निर्माता है। पूंजी मृत श्रम है, जो केवल जीवित श्रम चूसने पर पिशाच (खुन पीने और मांस खाने वाले) की तरह जीवित रहती है। दुनिया के मजदूरों के पास खोने के लिए केवल उनकी बेड़ियाँ के सिवाय और कुछ नहीं हैं। जब तक मजदूर को उसके द्वारा उत्पादित वस्तु का पूरा मूल्य नहीं मिलता, तब तक समाज में असमानता बनी रहेगी।"



अब्राहम लिंकन

"श्रम पूंजी से पहले आता है और स्वतंत्र है। पूंजी केवल श्रम का प्रतिफल है। बिना श्रम के पूंजी कभी अस्तित्व में नहीं आ सकती थी। इसलिए, श्रम बहुत अधिक उच्च विचार और सम्मान का पात्र है।"



डॉ. बी. आर. अंबेडकर

"मजदूरों को न केवल अपनी रोटी की चिंता करनी चाहिए, बल्कि उन्हें शासन करने वाली शक्ति भी बनना चाहिए। लोकतंत्र का अर्थ केवल वोट देना नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय है जिसमें मजदूर का हिस्सा बराबर हो।"

एडम स्मिथ



अर्थशास्त्र के जनक माने जाने वाले स्मिथ ने श्रम को धन का असली स्रोत बताया

"किसी भी देश की संपत्ति वहां की जमीन या सोने में नहीं, बल्कि वहां के मजदूरों के वार्षिक श्रम में निहित होती है। श्रम ही वह विनिमय मूल्य है जिससे दुनिया की सारी चीजें खरीदी जाती हैं।"

मैक्सिम गोर्की



मजदूरों के जीवन पर आधारित 'माँ' उपन्यास के लेखक गोर्की ने कहा था

"जब कार्य एक आनंद होता है, तो जीवन सुंदर बन जाता है। लेकिन जब कार्य केवल एक कर्तव्य या मजबूरी होती है, तो जीवन गुलामी बन जाता है। मजदूर ही वह कलाकार है जो दुनिया को हर दिन नया रूप देता है।"

मुख्य संपादक
कुलजीत डँगर खेड़ा
kuljittarkshil@gmail.com
9781925566
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
जसवंत मोहाली (98555-30721)
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
बीरबल भदौड़, कैलगिरी
+ 1 204 894-4371
बलदेव रहिपा, टरांटो
+ 1 41 688 17202
अच्छर सिंह खरलवीर (U.K.)
+ 1 44 748 635 1185
अवतार गोंदारा (U.S.A.)
+ 1 (559) 375-2589

पत्रिका शुल्क :–
वार्षिक : 150/– रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला–148101
01679–241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजिन्दर भदौड़, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर +91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

एक मई मजदूर दिवस विश्वभर के मजदूरों की एकता, अधिकारों और संघर्ष का प्रतीक है। इस दिन की शुरुआत सन् 1886 में अमेरिका के शिकागो में हुई श्रमिक हड़ताल से मानी जाती है, जहाँ मजदूरों ने आठ घंटे के कार्यदिवस के लिए संघर्ष किया था। समय के साथ, यह दिन मजदूरों के अधिकारों की रक्षा और उनके शोषण के विरोध का प्रतीक बन गया। दूनिया भर में इस समय मजदूरों की हालात बहुत से कारणों से बद से बदतर हो रही है।

अब हम बात करतें है भारत में मजदूरों की मौजूदा स्थिति की। हमारे देश में लागू चार मजदूर संहिताएँ मजदूरों के अधिकारों के लिए चिंता का विषय बन गई हैं। कई मजदूर संगठन और विद्वान मानते हैं कि ये संहिताएँ मजदूरों के अधिकारों की सुरक्षा को कम कर सकती हैं।

भारत सरकार ने 29 पुराने मजदूर कानूनों को चार मजदूर संहिताओं में समेकित किया गया है: 1-मजदूरी संहिता, 2-औद्योगिक संबंध संहिता, 3-सामाजिक सुरक्षा संहिता और व्यावसायिक सुरक्षा, 4-स्वास्थ्य और कार्य परिस्थितियाँ संहिता। सरकार का दावा है कि ये कानून उद्योगों को सुविधा प्रदान करने और रोजगार बढ़ाने के लिए बनाए गए हैं, लेकिन मजदूर वर्ग सोचता है कि इनसे उनको कई प्रकार के नुकसान हो सकते हैं।

सबसे पहले, अगर हम औद्योगिक संबंध संहिता की बात करें, तो इसने 300 कर्मचारियों तक वाली फैक्ट्रियों को सरकारी अनुमति के बिना कर्मचारियों की छंटनी करने की छूट दे दी है। पहले यह सीमा 100 कर्मचारियों की थी। इससे कंपनियों के लिए कर्मचारियों की छंटनी करना आसान हो सकता है और श्रमिकों की नौकरी की सुरक्षा कम हो सकती है। इसके अलावा, हड़ताल पर भी कई प्रतिबंध लगाए गए हैं, जिससे मजदूरों के संघर्ष की ताकत कमजोर हो सकती है।

दूसरी ओर, वेतन संहिता में न्यूनतम वेतन का उल्लेख है, लेकिन कई मजदूर संगठनों का मानना है कि बढ़ती महंगाई के मुकाबले यह वेतन पर्याप्त नहीं है। कई क्षेत्रों में संविदा प्रणाली के बढ़ने के कारण मजदूरों को पूरा वेतन और स्थिर रोजगार नहीं मिल पाता है।

सामाजिक सुरक्षा संहिता का उद्देश्य मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है, लेकिन वास्तविकता में इसके कार्यान्वयन की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं है। देश में असंगठित मजदूरों की संख्या बहुत अधिक है, जिन्हें इन लाभों तक पहुँचने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। इसी कारण अनेक मजदूर पेंशन, बीमा और अन्य लाभों से वंचित रह सकते हैं।

इसी प्रकार, व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थितियों संबंधी संहिता में कार्य सुरक्षा के नियम शामिल हैं, लेकिन मजदूर संगठनों का कहना है कि कई छोटे उद्योग इसके दायरे से बाहर रह सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप कई मजदूरों को सुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है।

मजदूर दिवस हमें याद दिलाता है कि मजदूरों के अधिकारों के लिए एक लंबा संघर्ष चला है। यदि नए कानून मजदूरों के अधिकारों की सुरक्षा को कमजोर करते हैं, तो यह मजदूर दिवस की भावना के विरुद्ध है। मजदूरों की शक्ति उनकी एकता और संगठन में निहित है। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि सरकार, उद्योगपति और मजदूर संगठन मिलकर ऐसी नीतियां बनाएं जो विकास के साथ-साथ मजदूरों के अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा सुनिश्चित करें।

अंत में यह कहा जा सकता है कि अगर चारों मजदूर संहिताएँ, मजदूरों की नौकरी की सुरक्षा, वेतन और संघर्ष के अधिकार को कमजोर करके सामाजिक असमानता को बढ़ाती हैं तो मजदूर दिवस का वास्तविक संदेश यह होगा कि मजदूर अधिकारों की रक्षा के लिए जागरूकता और संघर्ष जारी रहना चाहिए।

मृत्यु के बाद का तथाकथित मार्ग

–राम नाथ शुक्ला

हर धर्म में मृत्यु के बाद एक बात साझी है कि मनुष्य के इस जन्म में किए कर्मों का लेखा-जोखा होता है, लेकिन कर्मों के हिसाब-किताब और मृत्यु के बाद तथाकथित ईश्वर के दरबार तक पहुँचने के मार्ग को लेकर अलग-अलग मत जरूर हैं। इस्लाम के अनुसार तथाकथित कियामत के दिन सभी मृत अपनी कब्रों से उठेंगे और उनके कर्मों का हिसाब लगाकर उनके भाग्य का फैसला किया जाएगा, और उसी के अनुसार उन्हें स्वर्ग या नरक में भेजा जाएगा। इसी प्रकार, हिंदू धर्म के अनुसार मृत्यु के बाद आत्मा को भगवान तक पहुँचने के लिए एक लंबी यात्रा करनी पड़ती है। रास्ते में बड़ी-बड़ी बाधाएँ आती हैं और इन बाधाओं को पार करने के लिए जीवित रहते हुए बहुत प्रयास करने पड़ते हैं। यदि कोई यह प्रयास करता है, तो उसके लिए इन बाधाओं को पार करना आसान और निश्चित हो जाता है। जो लोग इन प्रयासों में असफल होते हैं, उन्हें अपार कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और जब वे इस मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाते, तो उन्हें इस पृथ्वी पर भूखे-प्यासे और नग्न भूतों की तरह भटकना पड़ता है। वे दुखी होते हैं, वे चीखते हैं। उनकी आवाज कोई नहीं सुन सकता। अंततः तंग आकर वे अपने ही बच्चों को दुखी करना शुरू कर देते हैं। उनका माना जाता है कि यदि आत्मा की मुक्ति करवा दी जाए, तो वे इस संसार को छोड़कर 'अगले लोक' में निवास करने में सक्षम हो जाते हैं। ये सभी बातें अवैज्ञानिक और अंधविश्वासपूर्ण हैं।

इस झूठे प्रचार से दुनिया अज्ञानता के मार्ग पर चल पड़ती है और अंधकार में भटकने लगती है, और पाखंडी अपने पाखंड का फायदा उठाते हैं। इस तरह के पाखंड से वे आम लोगों के मन में भय पैदा करते हैं और अपनी रोजी-रोटी कमाते रहते हैं। इस तरह आम लोग मानसिक बीमारियों को तथाकथित भूत-प्रेतों का साया या प्रभाव मानकर दुष्चक्र में फंस जाते हैं। इसके दो प्रकार के दुष्परिणाम होते हैं। पहला यह कि मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति को उचित उपचार नहीं मिल पाता और कभी-कभी तो तांत्रिकों द्वारा पिटाई के बाद उसकी जान भी चली जाती है, जिसके लिए तांत्रिक तथाकथित भूत-प्रेतों को दोष देकर खुद को पूरी तरह से निर्दोष साबित कर देते हैं। दूसरा यह कि तांत्रिक इस तरह के उपचार के लिए भारी भरकम रकम वसूलते हैं।

इसी प्रकार, मृत्यु के बाद के काल्पनिक मार्ग के बारे में दुष्प्रचार किया जाता है ताकि जो व्यक्ति अपने जीवनकाल में मृत्यु के बाद के वर्तमान मार्ग से भयभीत था, वह दान का मार्ग अपना ले और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी उससे भावनात्मक रूप से जुड़कर दान का मार्ग अपनाकर उसका मार्ग सुगम बना दें। इस मार्ग के बारे में बहुत डरावनी बातें फैलाई जाती हैं। कहा जाता है कि 'आत्मा' को कांटों भरे मार्ग से गुजरना पड़ता है, उसके पैर नंगे होते हैं, कांटे चुभते हैं और वह चल नहीं पाती तथा वापस लौटकर 'भूत' बन जाती है। खैर, अगर कोई पूछे, तो एक ओर आप कहते हैं कि तथाकथित आत्मा या प्रेत बिना शरीर के हवा में विचरण करता रहता है, दूसरी ओर आप कहते हैं कि कांटे उसके पैरों में चुभते हैं, इसमें सच्चाई और विश्वसनीयता कहाँ है? यह पूरी व्यवस्था केवल जूते दान करने के लिए बनाई गई है, ताकि उत्तराधिकारी मृतक के लिए किसी धार्मिक पुजारी के लिए जूते खरीदें, जिन्हें वह मुफ्त में पहन सके। इसी प्रकार, कहा जाता है कि मृतक के आराम करने के लिए कोई बिस्तर नहीं है, इसलिए उसके लिए गर्म बिस्तर और गद्दे की व्यवस्था करें, अन्यथा वह ठंड से मर जाएगा। गर्मी के मौसम में लेटने के लिए एक बिस्तर की भी आवश्यकता होती है, और ऐसे कपड़े जो सर्दी और गर्मी दोनों में पहने जा सकें, अन्यथा दिवंगत आत्मा को कष्ट सहना पड़ेगा।

इसी प्रकार, ये तथाकथित धार्मिक गुरु किसी व्यक्ति की दशा देखकर कहते हैं कि तुम्हारे पिता प्यासे हैं, पानी का प्रबंध करो, चांदी, सोने या तांबे का बर्तन लेकर पुण्य कर्म करो, तभी तुम्हारे पिता के लिए पानी का प्रबंध होगा। पीड़ित व्यक्ति यह नहीं सोचता कि जिस आत्मा का शरीर ही नहीं है, वह पानी कैसे पिएगी। यदि कोई आपत्ति करता है, तो वे कहते हैं, ''गुरु पर पूर्ण विश्वास रखो। अन्यथा तुम्हारे सारे कर्म व्यर्थ हो जाएंगे।'' साधारण व्यक्ति हमेशा भयभीत रहता है।

इसलिए, धार्मिक नेता, मृत्यु के बाद आने वाली बाधाओं

के डर पैदा करके , मृतक के परिवार की आर्थिक व मानसिक लूट करते हैं। स्वर्ग के मार्ग में आने वाली एक नदी का अक्सर जिक्र होता है, जिसे 'बैतरनी' कहा जाता है। कहा जाता है कि इस नदी में रक्त और राध बहते हैं और इसे पार करना अत्यंत कठिन है। इसे केवल वही व्यक्ति पार कर सकता है जिसने अपने जीवनकाल में गाय का दान किया हो या उसके वंशज ऐसा करें, अन्यथा वह नदी के किनारे 'भूत' बनकर भटकता रहता है। कोई पूछ सकता है कि गाय उसे तथाकथित स्वर्ग तक कैसे पहुंचाएगी, क्या यह असंभव नहीं है? यह सब आम लोगों की जेब से पैसा निकालने से संबंधित है, कुछ निकम्मे लोग पाखंड की मदद से मौज-मस्ती कर रहे हैं और आम लोगों को गुमराह करने का आनंद ले रहे हैं।

अत: लोगों को इस शोषण से बचाने के लिए तर्कशीलता को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। जब मनुष्य विचारशील हो जाता है, तो अंधविश्वासों का यह अंधकार दूर हो जाता है। यह केवल अध्ययन और चिंतन के माध्यम से ही संभव है।

वास्तव में जीवन क्या है?

जीवन क्या है यह प्रश्न मानव के लिए हमेशा से जिज्ञासा का विषय रहा है। जीवन केवल जन्म से मृत्यु तक की यात्रा नहीं, बल्कि अनुभवों, संघर्षों, भावनाओं और सीखों का समग्र रूप है। यह निरंतर परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया है, जिसमें हर क्षण हमें कुछ नया सिखाता है।

जीवन का अर्थ हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग हो सकता है। किसी के लिए यह सफलता और उपलब्धियों का नाम है, तो किसी के लिए प्रेम, संबंध और संतोष ही जीवन का वास्तविक सार है। जीवन हमें अवसर देता है कि हम अपने उद्देश्य को पहचानें और उसे पूर्ण करने का प्रयास करें।

संघर्ष जीवन का अभिन्न हिस्सा है। कठिनाइयाँ हमें मजबूत बनाती हैं और सही दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। जीवन में असफलताएँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे हमें सीखने और सुधारने का अवसर देती हैं।

अंतत:, जीवन का वास्तविक अर्थ दूसरों के प्रति सहानुभूति, सहयोग और सकारात्मक सोच में निहित है। जब हम अपने साथ-साथ दूसरों के जीवन में भी खुशियाँ बाँटते हैं, तभी जीवन सार्थक बनता।

लघुकथा

ताबीज

-हरिशंकर परसाई

एक छोटे से कस्बे में रामलाल नाम का व्यक्ति रहता था। वह पढ़ा-लिखा तो था, लेकिन अंधविश्वासों पर बहुत भरोसा करता था। उसके गले में हमेशा एक ताबीज लटका रहता था, जिसे वह अपनी किस्मत का राज मानता था।

रामलाल का मानना था कि उसकी हर सफलता उसी ताबीज की वजह से है। अगर उसका कोई काम बन जाता, तो वह गर्व से कहता-

''देखा, मेरा ताबीज कितना चमत्कारी है!''

एक दिन उसे शहर में एक महत्वपूर्ण इंटरव्यू देने जाना था। घर से निकलते समय उसने अपने ताबीज को छुआ और मन ही मन प्रार्थना की। लेकिन रास्ते में अचानक उसे महसूस हुआ कि ताबीज उसके गले में नहीं है।

वह घबरा गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया। वह सोचने लगा-

''अब तो मेरा काम जरूर बिगड़ जाएगा!''

उसके मन में डर बैठ गया, लेकिन समय कम था, इसलिए वह वापस भी नहीं जा सकता था। मजबूरी में वह बिना ताबीज के ही इंटरव्यू देने चला गया।

इंटरव्यू के दौरान उसने पूरे आत्मविश्वास और तैयारी के साथ जवाब दिए। उसने अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर हर सवाल का सही उत्तर दिया।

कुछ दिनों बाद परिणाम आया- रामलाल का चयन हो गया! ??

यह देखकर वह हैरान रह गया। उसने सोचा-

''ताबीज तो मेरे पास था ही नहीं, फिर भी मैं सफल कैसे हो गया?''

तभी उसे पहली बार एहसास हुआ कि उसकी सफलता का कारण ताबीज नहीं, बल्कि उसकी मेहनत, तैयारी और आत्मविश्वास था।

उस दिन के बाद रामलाल ने ताबीज और अंधविश्वासों पर विश्वास करना छोड़ दिया। उसने समझ लिया कि इंसान की असली ताकत उसके अंदर होती है, किसी बाहरी वस्तु में नहीं।

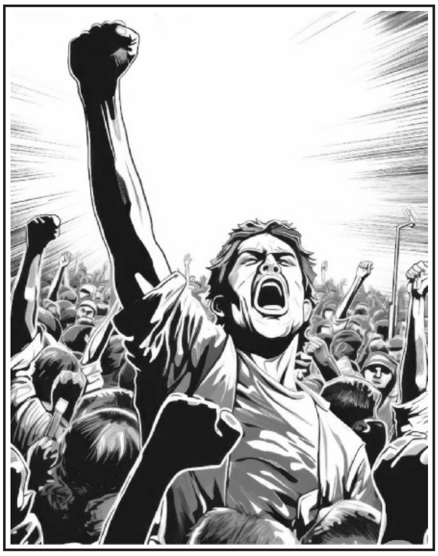
***

शिकागो हड़ताल

–अलेक्जेंडर टेक्नेनबर्ग

1 मई, 1886 को शिकागो में हुई हड़ताल कहीं अधिक उग्र थी। उस समय शिकागो श्रम संघर्ष का केंद्र था। हालाँकि इस आंदोलन ने श्रमिकों की समस्याओं पर विशुद्ध रूप से राजनीतिक रुख नहीं अपनाया, फिर भी यह एक जुझारू और उग्र आंदोलन था। यह श्रमिकों के जीवन और कार्य परिस्थितियों में सुधार के लिए लगातार प्रयासरत था।

शिकागो में बड़े पैमाने पर हड़ताल हुई, जिसमें सभी श्रमिक संगठनों ने भाग लिया। इस हड़ताल की तैयारी के लिए 'आठ घंटे संघ' का गठन बहुत पहले ही कर लिया गया था। वामपंथी श्रमिक संगठनों की एकता से गठित 'केंद्रीय श्रमिक संघ' ने इस संघ को पूर्ण समर्थन दिया, जो एक संयुक्त मोर्चा था और जिसमें 'श्रमिकों का समूह' और 'समाजवादी श्रमिक दल' भी शामिल थे। समाजवादी श्रमिक दल अमेरिका में श्रमिक वर्ग का पहला संगठित समाजवादी राजनीतिक दल था। मई के अंतिम रविवार को, इस संघ ने एक प्रदर्शन आयोजित किया जिसमें 25,000 श्रमिकों ने भाग लिया।



1 मई को भारी संख्या में श्रमिक शिकागो में उमड़ पड़े। इस संगठित श्रमिक आंदोलन के आह्वान पर शहर की सारी व्यवस्था ठप हो गई। श्रमिक आंदोलन ने इससे पहले कभी भी वर्ग एकता का ऐसा भव्य और प्रभावशाली प्रदर्शन नहीं किया था। आठ घंटे के कार्यदिवस का महत्व और हड़ताल के रूप में इसका विस्तार, पूरे आंदोलन को एक विशेष राजनीतिक अर्थ प्रदान करता है।

इस बीच, श्रमिकों के शत्रु चुप नहीं बैठे। शिकागो में, उद्योगपतियों और नगर प्रशासन की संयुक्त ताकतें, जो आक्रामक थीं, श्रमिकों के प्रदर्शन को इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया क्योंकि वे नेताओं को खत्म करने और इस तरह शिकागो में पूरे श्रमिक आंदोलन को कुचलने की कोशिश कर रहे थे।

3 और 4 मई की घटनाएँ, जिन्हें हे मार्केट घटना के नाम से जाना जाता है, स्पष्ट रूप से मई दिवस की हड़ताल का परिणाम थीं। 4 मई को हे मार्केट में हुआ प्रदर्शन 3 मई को मैककॉर्मिक रीपर वर्क्स में श्रमिकों के जमावड़े पर पुलिस द्वारा किए गए क्रूर हमले के विरोध में था। इस क्रूर हमले में छह श्रमिक मारे गए और कई अन्य घायल हो गए।

हे मार्केट में प्रदर्शन समाप्त होने ही वाला था कि पुलिस ने उस पर हमला कर दिया। इस हमले में फेंके गए बम से चार मजदूर और सात पुलिसकर्मी मारे गए। हे मार्केट में हुआ यह भयानक रक्तपात, जिसके परिणामस्वरूप मजदूर नेताओं पार्सन्स, स्पाइस, फिशर और एंजेल को फांसी दी गई और शिकागो के सभी जुझारू मजदूर नेताओं को जेल में डाल दिया गया, संघर्षरत जनता के प्रति शिकागो के पूंजीवादी उद्योगपतियों की प्रतिक्रिया थी।

शिकागो के श्रम नेताओं की हत्या के बाद, अमेरिकी श्रम संघ ने आंदोलन को पुनर्जीवित करने के लिए सेंट लुइस में एक सम्मेलन आयोजित किया। यह मई दिवस श्रम संघर्ष का प्रतीक बन गया।

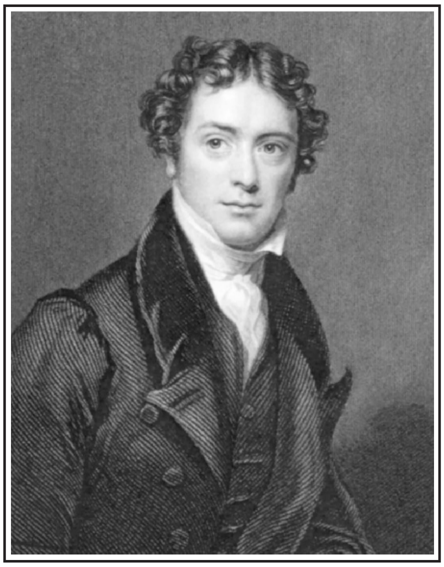
डॉ. भीमराव आंबेडकर के अनुसार मजदूर समाज की प्रगति का आधार है। उन्होंने मजदूर के अधिकार, उचित वेतन, काम के घंटे और सामाजिक सुरक्षा पर जोर दिया। आंबेडकर ने श्रमिकों के शोषण का विरोध किया और उन्हें संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उनके विचारों में समानता, न्याय और गरिमा का विशेष महतव है।

माइकल फैराडे : सादगी, कड़ी मेहनत और महानता

शाही प्रयोगशाला में प्रवेश करते ही सरकारी कर्मचारी की नजर एक साधारण से व्यक्ति पर पड़ी। जैसे ही उसने मुझे देखा, उसने मुझसे एक के बाद एक कई सवाल पूछे, ''क्या तुम यहाँ नौकर हो? क्या तुम्हें अच्छी तनख्वाह मिलती है? तुम्हारा नाम क्या है?''

कहता, ''हां, यह अच्छी मिलती है, लेकिन अगर इसमें थोड़ी और वृद्धि हो जाए तो और भी अच्छा होगा।''

''मेरा नाम प्रोफेसर माइकल फैराडे है, जिनके मार्गदर्शन में आप यहां प्रयोग करने आए हैं।''



कर्मचारी विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक के पहनावे और सादगी को देखकर चकित रह गया। उसे आश्चर्यचकित देखकर माइकल ने अपनी कहानी सुनाई।

हैरान मत होइए, मैं बचपन से ही ऐसा हूँ। जब मैं छोटा था, तो थोड़ा लापरवाह था। मैं कुछ अक्षरों का उच्चारण ठीक से नहीं कर पाता था। मेरी शिक्षिका उच्चारण को लेकर बहुत सख्त थीं। वह मुझे सही से बोलने के लिए डांटती थीं, लेकिन मैं सही से बोल ही नहीं पाता था। वह मुझे हर दिन डांटती थीं और मैं घर आकर अपनी माँ के सामने रोता था। मेरे बाल मन पर शिक्षिका का इतना डर था कि आखिरकार मेरे परिवार को मुझे स्कूल से हटाना पड़ा।

मुझे पढ़ना बहुत पसंद था, लेकिन स्कूल जाने से डर लगता था। घर में इतनी गरीबी थी कि रोजी-रोटी कमाना मुश्किल था, किताबों का शौक पूरा करने की तो बात ही छोड़िए,किशोरावस्था में ही मुझे एक अखबार विक्रेता के यहाँ नौकरी मिल गई। वहाँ अखबार बाँटते समय मैं अखबारों पर नज़र डालता रहता था। लोग मुझे किताबों को जिल्द करवाने के लिए देते थे।

मैं किताबों की जिल्द बनाता और रात में उन्हें पढ़ता था। कभी-कभी मैं अपना पूरा वेतन बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों के व्याख्यान सुनने में खर्च कर देता था। उनके व्याख्यान सुनने के बाद और दुकान में आने वाली किताबों के आधार पर, मैंने कुछ लेख लिखे जो हमारे दुकान के ग्राहक श्री डांस को बहुत पसंद आए।

उनकी बदौलत मुझे प्रसिद्ध वैज्ञानिक डेवी के व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। अंततः, कई बार मना करने के बाद, डेवी ने मेरी लगन देखकर मुझे अपने साथ प्रयोगशाला में रख लिया। डेवी के संपर्क में आने से मेरा जीवन बदल गया। मैं उनके बहुत करीब आ गया और उनसे प्यार करने लगा, लेकिन जब मैंने उन्हें चुम्बकों के बीच कुंडली घुमाकर बिजली पैदा करके दिखाई , तो डेवी मुझसे ईर्षा करने लगा।

यह स्वाभाविक ही था कि एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय-शिक्षित वैज्ञानिक एक गरीब आदमी की इस उपलब्धि की सराहना नहीं करेगा जो एक झुग्गी बस्ती से ऊपर उठा था।

किसी कारण वश उसने मुझसे झगड़ा किया और मेरा प्रतिद्वंद्वी बन गया, लेकिन मेरे मन में उसके प्रति सम्मान का भाव बना रहा। मेरे पास कोई शैक्षणिक डिग्री नहीं थी। फिर भी मैं इक्कीस वर्षों तक सैन्य अकादमी में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में जाना जाता रहा। जीवन भर मैं अध्ययन, अध्यापन और शोध में इतना मग्न रहा कि मैंने दिखावे और चकाचौंध की दुनिया पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया।

कुछ पैसा आने के बाद और महारानी विक्टोरिया द्वारा दिए गए अनेक उपहारों के बावजूद, मेरा जीवन सरल ही रहा। मेरी मेहनत और सादगी ने मुझे सफलता के शिखर तक पहुँचाया। कर्मचारी मन ही मन प्रो. फैराडे की महानता को नमन कर रहा था।

मजदूरों का अंधाधुंध शोषण

महंगे ब्रांड

–शिवानी

शॉपिंग मॉल की भव्यता अपने आप में एक अलग ही बात है। रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगाती ऊंची इमारतों में कदम रखते ही आपका स्वागत महंगे कपड़ों की दुकानों से होता है, जहां मध्यम वर्ग के लोग भी कपड़े खरीदने का खर्च नहीं उठा सकते, जहां कपड़ों की कीमतें देखकर हम कांप उठते हैं। लेकिन यह सारी चकाचौंध, बड़ी-बड़ी, आलीशान दुकानें, दुकानों में सजे रंग-बिरंगे और खूबसूरत कपड़े महज़ एक पर्दा हैं - एक ऐसा पर्दा जो उस लूट, अत्याचार और अन्याय को छुपाता है, जिसके पीछे उन लोगों का खून चूसा जाता है जो इन कपड़ों को बनाते और रंगते हैं।



मार्क्स एंड स्पेंसर, टेस्को और मेन्सवियर जैसे बड़े ब्रांडों और फैशन हाउस राल्फ लॉरेन (जिस ब्रांड के कपड़ों की कीमत लाखों में है) को कपड़े सप्लाई करने वाली फैक्ट्रियों में काम करने वाले भारतीय मजदूर बड़े पैमाने पर लूट का सामना कर रहे हैं। इन फैक्ट्रियों में काम करने वाली महिला मजदूरों ने बताया, 'हम लगातार काम करते हैं और रात में भी। हम रात के 3 बजे के आसपास सोते हैं। फिर सुबह 5 बजे उठकर पूरा दिन काम करते हैं।'

''हमें बाथरूम जाने या पानी पीने तक का समय नहीं दिया जाता। हमें खाने का भी मुश्किल से समय मिलता है, और तब भी मैनेजर हमारे ऊपर खड़ा रहता है और जैसे ही हम खाना खाते हैं, हमें सीटी बजाकर वापस काम पर जाने के लिए कहा जाता है।''

''मजदूरों और कर्मचारियों को जबरन ओवरटाइम काम करवाया जाता है और अतिरिक्त काम खत्म होने तक उन्हें घर जाने से रोका जाता है। हमें जबरदस्ती ज़्यादा काम करवाया जाता है। जब हम मना करते हैं, तो वे हम पर चिल्लाते हैं और हमें नौकरी से निकालने की धमकी देते हैं। हम डरे हुए हैं, हम अपनी नौकरी खोना नहीं चाहते।''

''हमारे बॉस हमारी परवाह नहीं करते, उन्हें सिर्फ उत्पादन की चिंता है।''

इन इकबालिया बयानों से महंगे ब्रांडेड कपड़े बनाने वाले मजदूरों की जमीनी स्थिति का पता चला।

राल्फ लॉरेन की 'ग्लोबल सिटिजन एंड सस्टेनेबिलिटी' रिपोर्ट के अनुसार, ''कंपनी उत्पादन में लगे मजदूरों को गरिमापूर्ण और सम्मानजनक जीवन प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।'' रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ''मजदूरों से ओवरटाइम काम करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए और न ही उन्हें मौखिक दबाव या दुर्व्यवहार का शिकार बनाया जाना चाहिए।''

यदि हम कामकाजी महिलाओं के उपरोक्त कथनों और कंपनियों के दावों की तुलना करें, तो खोखले दावों की सच्चाई सामने आ जाती है। साथ ही, रिपोर्ट प्रकाशित करके अपने अधीन काम करने वाले कर्मचारियों को अच्छा वातावरण और अच्छा वेतन देने का दावा करने वाली कंपनियों का महिमामंडन श्रमिकों के जीवन की भयावह सच्चाई के सामने फीका पड़ जाता है।

दरअसल, सस्ते श्रम और कमजोर श्रम कानूनों के कारण भारत विदेशी कंपनियों के लिए कारखाने स्थापित करने का एक आकर्षक केंद्र बन गया है। मजदूरों की पिछड़ी स्थिति, बेरोजगारी की भयावहता और उनमें एकता की कमी कारखाने के मालिकों को मजदूरों के खून की आखिरी बूंद तक निचोड़कर मुनाफा कमाने की खुली छूट देती है।

इन सभी आरोपों के जवाब में, उपर्युक्त बॉन्डों का कहना है कि भारत में संचालित कारखानों में काम करने वाले

मजदूर उनके प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में नहीं हैं। इसलिए, वे मजदूरों के लिए जिम्मेदार नहीं हैं।

बीच में अभी भी एक खाई बनी हुई है, लेकिन वे मजदूरों द्वारा लगाए गए आरोपों पर ध्यान देंगे।

कंपनियां इन तथाकथित ब्रांडेड कपड़ों से भारी मुनाफा कमाती हैं, जबकि कामगारों को कोई नुकसान नहीं होता। इन कारखानों में काम करने वाली महिला कामगारों की दैनिक मजदूरी लगभग 220 रुपये है, जबकि उनके द्वारा बनाए गए कपड़े बाजार में सैकड़ों गांवों में बिकते हैं। 'एक्शन एड इंडिया' की एक रिपोर्ट के अनुसार, सर्वेक्षण में शामिल 40 प्रतिशत से अधिक कामगारों ने बताया कि उनकी औसत मासिक आय 6,000 से 8,000 रुपये है। राल्फ लॉरेन को कपड़े सप्लाई करने वाले एक कारखाने में काम करने वाली एक महिला के अनुसार, ''उसकी पूरी परिवार की मासिक आय में कटौती हो गई है।'' इस अंधाधुंध महंगाई के दौर में 6,000-7,000 रुपये की आय से वे अपना और अपने बच्चों का भरण-पोषण कैसे करतीं? शायद इसकी कल्पना करना भी हमारे बस की बात नहीं है।

खुद मजदूरों द्वारा सुनाई गई कहानियाँ और कंपनियों तथा आपूर्ति कारखानों द्वारा की गई लूट की कहानियाँ हमें विश्व के श्रम विभाजन को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं, कि कैसे एक ओर मुट्ठी भर लोगों (वास्तव में, शोषकों) के लिए विलासिता के विशाल और आलीशान द्वीप बनाए गए हैं, जहाँ उनके द्वारा उपयोग की जाने वाली हर छोटी चीज़ की कीमत करोड़ों में है, और कैसे दूसरी ओर, दुनिया की एक बड़ी आबादी को दुनिया के छोटे और गंदे हिस्सों में रहने के लिए मजबूर किया गया है, और उनकी कड़ी मेहनत के बावजूद, उनके बच्चे बुनियादी दवाओं की कमी या महंगे इलाज तक पहुँच न होने के कारण मौत के कगार पर पहुँच जाते हैं।

हर दिन समाज में घूमते हुए, चारों ओर देखते हुए, अखबारों की सुर्खियाँ पढ़ते हुए और सरकारी नीतियों के प्रभाव को समझते हुए, क्या आपको यह असमानता नज़र नहीं आती? और अगर आती है, तो क्या असमानता की इस दुनिया को आर्थिक और सामाजिक समानता की दुनिया से नहीं बदल देना चाहिए?

62838 73197

डायन

–मुंशी प्रेम चंद

एक छोटे से गाँव में सोमरी नाम की एक गरीब विधवा रहती थी। उसका कोई अपना नहीं था। वह जंगल से लकड़ी लाकर बेचती और अपना जीवन चलाती थी।

गाँव के लोग उससे ज्यादा बात नहीं करते थे, क्योंकि वह अकेली रहती थी और थोड़ी चुप-चुप रहती थी।

एक साल गाँव में अचानक कई लोग बीमार पड़ने लगे। बच्चों को बुखार आने लगा, पशु मरने लगे। गाँव के कुछ लोगों ने बिना सोचे-समझे यह कहना शुरू कर दिया–

''यह सब सोमरी की वजह से हो रहा है वह डायन है!''

धीरे-धीरे यह बात पूरे गाँव में फैल गई। लोग सोमरी से डरने लगे। कोई उसके पास नहीं जाता था। बच्चे उसे देखकर भाग जाते थे।

एक दिन गाँव के कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया और उसके साथ बुरा व्यवहार किया। सोमरी रोती रही और कहती रही–

''मैं निर्दोष हूँ, मैंने कुछ नहीं किया!''

तभी गाँव में एक नया शिक्षक आया, जिसका नाम अरुण था। उसने यह सब देखा और लोगों को रोकने की कोशिश की।

अरुण ने गाँव वालों से कहा–

''बीमारी का कारण कोई इंसान नहीं, बल्कि गंदा पानी और मच्छर हैं। जिसके कारण बिमारी फैल रही है!''

उसने गाँव में सफाई अभियान शुरू करवाया, लोगों को उबला हुआ पानी पीने की सलाह दी और डॉक्टर को बुलाया।

कुछ दिनों बाद गाँव के लोग ठीक होने लगे। तब सबको समझ आया कि बीमारी का कारण सोमरी नहीं, बल्कि गंदगी और मच्छर थे।

गाँव वालों को अपनी गलती का एहसास हुआ। वे सोमरी के पास गए, उससे माफी मांगी।

सोमरी की आँखों में आँसू थे, लेकिन इस बार वह दुख के नहीं, बल्कि इंसाफ के आँसू थे।

उस दिन के बाद गाँव में किसी को ''डायन'' कहकर दोषी ठहराना बंद कर दिया गया।

इस्लामिक दर्शन और वैज्ञानिक सोच पर तुलनात्मक विचार चर्चा

प्रस्तुतकर्ता :- जसवंत मोहाली

तर्कशील समूह हिंदी प्रदेश नाम के व्हाट्सएप ग्रुप में धर्म पर विचार चर्चा चल पड़ी। धर्म की तरफ से जुबेर क्योंकि इस्लाम के विद्यार्थी हैं, इसलिए यह चर्चा धर्म और विज्ञान के बारे में न होकर इस्लाम और वैज्ञानिक सोच पर केंद्रित हो गई। व्हाट्सएप ग्रुप में यह चर्चा पिछले दिनों लल्लनटॉप पर जावेद अख्तर और मुफ्ती इस्माईल के बीच हुई बहस से काफी पहले की है लेकिन व्हाट्सएप ग्रुप से कई दिनों तक चली इस बिखरी हुई बहस में से महत्वपूर्ण बातों को निकालने में काफी समय लग गया। लेकिन यह चर्चा भी लल्लनटॉप की बहस जितनी ही दिलचस्प लगी। चर्चा दो-तीन मुद्दों पर चलती रही 1. इस्लामिक दर्शन और वैज्ञानिक सोच पर तुलनात्मक विचार चर्चा, 2. इस्लाम और वैज्ञानिक सोच की नजर में नैतिकता, 3. धर्मनिरपेक्षता और इस्लाम। इस चर्चा की मुख्य बातें संक्षेप में तर्कशील पथ के पाठकों की जानकारी व दिलचस्पी के लिए दी जा रही है।

जुबेर : कुरआन ने खुद 'तदब्बुर' (गहराई से विचार), 'तफ़क्कुर' (मनन), और 'इज्तेहाद' (नवीन परिस्थितियों में स्वतंत्र तर्क) को प्रोत्साहित किया है। यानी इस्लाम के भीतर ही तर्कशीलता का एक सुसंगत ढाँचा मौजूद है जो इस्लाम के मूल सिद्धांतों को अखंडित रखते हुए परिस्थितियों के अनुसार अर्थ निकालने की अनुमति देता है।

दूसरी बात 'धर्म के भीतर रहकर तर्क नहीं किया जा सकता' कहना एक false binary प्रस्तुत करता है।

इस्लामी इतिहास में फ़िक़्ह (इस्लामी विधिशास्त्र) और कलाम (धार्मिक दर्शन) की परपराएँ इस बात की गवाही देती हैं कि तर्क, बहस, और भिन्न मत धर्म के बाहर नहीं, बल्कि धर्म के भीतर ही फले-फूले।

पुनर्जीवन (revival) का अर्थ ग्रंथ को बदलना नहीं, बल्कि व्याख्या और अनुप्रयोग को पुनःजीवित करना है। इस्लाम में 'तजदीद' (reform/revival) और 'इज्तेहाद' की अवधारणा इसी सिद्धात पर टिकी है कि वक़्त और समाज के बदलते स्वरूप के अनुसार इस्लामी मूल्यों की नई व्याख्या की जाए।

इस्लाम के भीतर तर्क का मार्ग बंद नहीं बस उपेक्षित है और हर पुनर्जीवन इसी भूले हुए तर्कशील तत्व को पुनः खोजने से शुरू होता है।

प्रशांत दिल्ली : आपकी बात में एक महत्त्वपूर्ण अंतर्विरोध है आप 'धर्म की मूल भावना' और 'धर्म की बाद की व्याख्याओं को दो अलग स्तरों पर रखकर एक प्रकार का पुनर्पवित्रीकरण (re-sacralization) करने की कोशिश कर रहे हैं, जबकि समस्या का मूल स्रोत स्वयं दैवी विधान' की अपरिवर्तनीयता में निहित है।

जुबेर : जी बिलकुल सही, आपने सही कहा कि मेरी बात में 'धर्म की मूल भावना' और 'बाद की व्याख्याएँ अलग स्तर पर रखी गई है। इसे इस्लामी दृष्टि से समझें: कुरआन और हदीस में मूल सिद्धांत जैसे न्याय, करुणा, सचाई और इंसानी गरिमा स्थायी माने गए हैं। इसे हम 'दैवी विधान' मान सकते हैं।

लेकिन इसका अनुप्रयोग और व्याख्या समय, समाज और परिस्थिति के अनुसार बदलती रही है। यही भूमिका निभाता है फिक़्ह (Fiqh) जो इस्लामी कानून, नैतिकता और दैनिक जीवन के नियमों की व्याख्या है। फिक़्ह मूल सिद्धांतों को वास्तविक जीवन में लागू करने का विज्ञान है। उदाहरण के तौर पर:

1. जकात (दान) - कुरआन में निर्दिष्ट है कि संपन्न लोग गरीबों की मदद करें। मूल भावना है सामाजिक न्याय और सहायता। 7वीं सदी के अरब समाज में इसका अनुप्रयोग सीमित संसाधनों और सामाजिक संरचना के अनुसार था। फिक़्ह ने इसे विभिन्न परिसंपत्तियाँ और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार व्याख्यायित किया। आज, हम इसे टैक्स सिस्टम या सरकारी सामाजिक योजनाओं में लागू कर सकते हैं- मूल सिद्धांत वही, तरीका बदल गया।

जब एक समय ऐसा भी आया कि ज़कात देने वाले

बहुत थे लेकिन लेने वाले कम, ऐसे में अधिक ज़कात को बैतुलमाल (state treasure) में समाज के कल्याण और विकास के लिए खर्च किया जाता था।

2. सजा और दंड - कुरआन में कुछ दंड निर्दिष्ट है, लेकिन फिक़्ह ने इनके उपयोग के लिए परिस्थितियों, प्रमाणों और न्यायिक प्रक्रिया को बहुत सख्ती से सीमित किया। यह दिखाता है कि दैवी विधान स्थिर है, लेकिन उसका प्रयोग न्यायपूर्ण ढंग से नियंत्रित और अनुकूलित किया जा सकता है।

3. महिला अधिकार - कुरआन में महिलाओं को शिक्षा, संपत्ति और गरिमा देने की आज्ञाएँ हैं। फिक़्ह ने इन्हें सामाजिक प्रथाओं के अनुसार समझाया और लागू किया। मध्यकालीन व्याख्याओं में कभी-कभी अधिकार सीमित किए गए, लेकिन मूल सिद्धांत महिला को बराबरी और सम्मान देना - अपरिवर्तनीय है। आज इसे आधुनिक मुस्लिम समाज में लागू करना उसी मूल विधान का सही अनुप्रयोग है।

इस प्रकार, 'दैवी विधान की अपरिवर्तनीयता मूल नैतिक दिशा प्रदान करती है, जबकि फिक़्ह उस दिशा को बदलते समय, समाज और परिस्थिति के अनुसार व्यवहारिक रूप में रखता है। यही इस्लाम की ताक़त है स्थिर सिद्धांत, लचीला अनुप्रयोग, और विज्ञान या तर्क के लिए खुला मार्ग। लेकिन समस्या ये है कि आज के दौर के हिसाब से फ़िक़्ह में भी लम्बे समय से कोई परिवर्तन और गौर फ़िक्र नहीं हुआ है।

इस्लाम ने कभी नहीं कहा कि जो विज्ञान न समझा पाए, उसे ईश्वर कह दो। बल्कि कहा कि विज्ञान ईश्वर की कृतियों की व्याख्या करता है, ईश्वर की जगह नहीं लेता। 'कट्टरपंथ' इस्लाम नहीं, इस्लाम की गलत व्याख्या है। कट्टरता हर विचार में होती है- धार्मिक में भी, और वैज्ञानिक में भी।

प्रशांत दिल्ली : इस्लाम की शुरुआत सातवीं शताब्दी में अरब समाज में हुई, जहाँ 'इल्म' अर्थात ज्ञान को अत्यंत महत्व दिया गया। कुरान की पहली आयत 'पढ़ो अपने रब के नाम से, जिसने पैदा किया' (सूरा अल-अलक 96:1)- अक्सर इस्लामी ज्ञानपरंपरा की बुनियाद मानी जाती है। इसी प्रकार, 'क्या जानने वाले और न जानने वाले बराबर है?' (सूरा अज-जुमर 39:9) जैसी आयतें ज्ञान के सम्मान की बात करती है। प्रारंभिक इस्लामी चिंतन में ज्ञान को ईश्वर की देन माना गया और इसे ईश्वर की सत्ता की पुष्टि का माध्यम समझा गया। इस दृष्टि से ज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज नहीं, बल्कि 'सत्य के स्रोत- अल्लाह की पहचान था। यह दिशा विज्ञान के स्वभाव से भिन्न थी, क्योंकि विज्ञान किसी भी परमाधार से स्वतंत्र होकर अनुभव, परीक्षण और सदेह के आधार पर कार्य करता है।

आठवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच इस्लामी साम्राज्य में एक व्यापक बौद्धिक आदोलन उभरा, जिसे 'इस्लामी स्वर्ण युग' कहा जाता है। अब्बासी खिलाफ़त के दौर में बगदाद, दमिश्क, काहिरा और कॉर्डोबा जैसे शहर ज्ञान के केंद्र बने। बगदाद में स्थापित बैत अल-हिक्मा' (House of Wisdom) ने यूनानी, फारसी और भारतीय ग्रंथों का अनुवाद कराया और एक नए बौद्धिक युग की शुरुआत की। अल-ख्वारिज़्मी, अल-बिरूनी, इब्न सीना, इब्न अल-हैयम और अल-राज़ी जैसे विद्वानों ने गणित, भौतिकी, खगोलशास्त्र, रसायन और चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। किंतु इन सभी प्रयासों के पीछे जो दार्शनिक ढाँचा था, यह धार्मिक था। अधिकांश वैज्ञानिकों ने अपने कार्य को 'अल्लाह की सृष्टि को समझने का प्रयास' बताया। उनके अनुसार, प्राकृतिक नियम ईश्वर की इच्छा के प्रतिबिंब है। इस दृष्टि ने विज्ञान को धर्म के अधीन बनाए रखा वैज्ञानिक प्रयास को ईश्वर की सत्ता की पुष्टि का साधन बना दिया।

प्रारंभिक इस्लामी दर्शन में इस संबंध को व्यवस्थित करने की कोशिश की गई। फ़ाराबी, इब्न सीना और इब्न रुश्द जैसे दार्शनिकों ने ग्रीक तर्कशास्त्र को इस्लामी धर्मशास्त्र के साथ जोड़ा। उन्होंने कहा कि धर्म और तर्क में विरोध नहीं है: दोनों ईश्वर की सचाई तक पहुँचने के अलग-अलग मार्ग है। किंतु यह सामंजस्य अतत: विज्ञान की स्वतंत्रता का नहीं, धर्म की सार्वभौमिकता का समर्थन था। यानी धर्म 'अंतिम सत्य' बना रहा और तर्क वा विज्ञान उसकी पुष्टि के साधन मात्र बने। इस वैचारिक ढाँचे में प्रयोग, संदेह और खडन जो वैज्ञानिक चेतना के आधार है को सीमित कर दिया गया।

ग्यारहवी सदी में यह वैचारिक संघर्ष निर्णायक रूप लेता है। अल-ग़ज़ाली (1058-1111) ने अपने प्रत्तिद्ध ग्रंथ 'तहाफ़ुत अल-फलासिफा' (दार्शनिकों की विफलता) में यह तर्क दिया कि मानव बुद्धि सीमित है और अंतिम सत्य केवल 'वही' (रहस्योद्घाटन) के माध्यम से ही जाना जा सकता है। उन्होंने अस्तू और फ़ाराबी जैसे तर्कवादी दार्शनिकों की आलोचना करते हुए कहा कि तर्क से ईश्वर की समझ अधूरी और भ्रमित

है। यह ग्रंथ इस्लामी बौद्धिक इतिहास का टर्निंग पॉइंट सिद्ध हुआ। ग़ज़ाली के बाद दार्शनिक विचार को शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। धार्मिक अधिकार सर्वोच्च बन गया और वैज्ञानिक विचार-जो लगातार प्रश्न उठाने और प्रमाण मागने पर आधारित था-संदेहास्पद समझा गया। इसी के बाद इब्न रुश्द जैसे तर्कवादी विद्वान हाशिये पर चले गए।

गज़ाली के इस धार्मिक प्रतिपक्ष ने इस्लामी जगत की बौद्धिक दिशा को गहराई से बदल दिया। विज्ञान और तर्क को ईश्वरीय अधीनता में रखा गया। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक चेतना जो स्वतंत्र प्रयोग और आलोचनात्मक विवेक पर टिकी होती है कमजोर पड़ने लगी। यूरोप में जब 16वी-17वी सदी में गैलीलियो, कोपरनिकस और न्यूटन जैसे विचारकों ने धार्मिक व्याख्याओं से स्वतंत्र होकर प्रकृति के नियमों का अध्ययन किया, तब इस्लामी दुनिया पहले ही धर्मशास्त्रीय जकड़न में फँस चुकी थी।

इस्लामी परंपरा में एक और वैचारिक प्रवृत्ति भी रही यह मानना कि ब्रह्मांड में जो कुछ है, वह अल्लाह की निशानी (आयत) है। इस धारणा में प्रतीकात्मक सौंदर्य अवश्य है, पर यह विज्ञान की स्वायत्तता को सीमित करती है। जब हर प्राकृतिक घटना को 'ईश्वर की योजना' के रूप में देखा जाता है, तब खोज की दिशा किसी अज्ञात सत्य की ओर नहीं, बल्कि पहले से ज्ञात धार्मिक सत्य की पुष्टि की ओर मुड़ जाती है। उदाहरण के लिए, 'खगोल विज्ञान को इस हद तक प्रोत्साहन मिला कि वह प्रार्थना के समय, दिशा और कैलेंडर निर्धारण में सहायक हो; पर जब उसने ईश्वरकेंद्रित ब्रह्माड धारणा को चुनौती दी, तो उसे अस्वीकार कर दिया गया।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में, जब मुस्लिम समाज को औपनिवेशिक आधुनिकता और पश्चिमी विज्ञान का सामना करना पड़ा, तब इस पुराने प्रश्न को फिर से उठाया गया 'क्या इस्लाम और आधुनिक विज्ञान में विरोध है?' इस प्रश्न का उत्तर कई आधुनिक विचारकों ने यह कहकर दिया कि कुरान में विज्ञान का विरोध नहीं, बल्कि समर्थन है। सैयद अहमद खान ने कहा कि 'कुरान का उद्देश्य मानव को प्रकृति के नियमों को समझने की प्रेरणा देना है।' मिस्र के मुहम्मद अब्दुह और भारत के इकबाल ने भी यही कहा कि इस्लाम प्रयोग, तर्क और अवलोकन को प्रोत्साहित करता है। पर यह व्याख्या भी मूलतः रक्षात्मक थी। यहाँ भी विज्ञान को इस्लाम-संगत बनाना ही उद्देश्य था, न कि उसे स्वतंत्र बौद्धिक क्षेत्र के रूप में स्वीकार करना। इस प्रकार 'इस्लामी विज्ञान' की धारणा उभरी जो प्रयोगात्मक विज्ञान नहीं, बल्कि धार्मिक आस्था के अनुरूप विज्ञान की परिकल्पना थी।

यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक चेतना को पुनः धार्मिक अधीनता में ले आई। 'इस्लामी विज्ञान' का तात्पर्व वा ऐसा विज्ञान जो कुरान से विरोध न करे। जबकि वास्तविक विज्ञान किसी ग्रंथ, धर्म या ईश्वर के प्रति बाध्य नहीं होता। वैज्ञानिक चेतना की आत्मा है संदेह करने की स्वतंत्रता, प्रमाण की प्राथमिकता और प्राधिकरण की आलोचना। इस्लामी धार्मिक संरचना, जिसने कुरान और हदीस को अंतिम और अपरिवर्तनीय सत्य माना गया है, इन तीनों तत्वों के साथ सीधे टकराव में आती है। इसलिए जहाँ विज्ञान स्वतंत्र तर्क का आग्रह करता है, वहाँ धर्म आज्ञापालन का।

इस विरोधाभास का परिणाम बौद्धिक ठहराव के रूप में सामने आया। इस्लामी दुनिया में तेरहवीं सदी के बाद कोई नई वैज्ञानिक क्रांति नहीं हुई। बगदाद का बैत अल-हिक्मा नष्ट हो चुका था, और ज्ञान का केंद्र यूरोप में स्थानांतरित हो गया था। इस्लामी समाज में 'इल्म' अब धार्मिक शिक्षा (फिक़्ह, हदीस, कलाम) तक सीमित रह गया। प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड के प्रश्नों को धार्मिक व्याख्या के अधीन कर दिया गया। यही वह ऐतिहासिक क्षण था जब इस्लामी परंपरा में वैज्ञानिक चेतना, यद्यपि कभी प्रज्वलित हुई थी, धीरे-धीरे बुझने लगी।समकालीन समय में भी इस्लामी देशों में विज्ञान और धर्म के बीच यही तनाव विद्यमान है। कुछ विद्वान विज्ञान को 'पश्चिमी षडयंत्र मानते हैं, जो ईश्वरहीनता फैलाता है, जबकि कुछ इसे इस्लामी मिद्धातों के अनुरूप सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। दोनों ही प्रवृत्तियाँ वैज्ञानिक चेतना की स्वतंत्रता को बाधित करती है। क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि का मूल है किसी भी स्थापित सत्य घर प्रश्न उठाना। अब यह प्रश्न उठाने की स्वतंत्रता धर्म या ईश्वर की मर्यादा से बंधी हो, तो विज्ञान की आत्मा स्वाभाविक रूप से कुंद हो जाती है।

इस्लाम में विज्ञान को 'पूरक' मानने की परंपरा प्रारंभ में भले ही ज्ञानोन्मुख प्रतीत हुई, किंतु वास्तव में यह परंपरा विज्ञान की स्वतंत्रता को धर्म के अधीन रखती है। इस परंपरा ने धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या को सर्वोच्च बना दिया और प्रयोग, संशय और आलोचना जो वैज्ञानिक चेतना की आत्मा है को

सीमित किया। परिणामत: इस्लामी सभ्यता ने इतिहास में असाधारण वैज्ञानिक उपलब्धियाँ दी, किंतु उसकी बौद्धिक संरचना ने स्वयं उस चेतना की जड़ काट दी, जिससे वह संभव हुई थी।

इस्लाम और विज्ञान की पूरकता की परंपरा, जो एक समय में सांस्कृतिक आत्मरक्षा का साधन भी आधुनिक काल में वैज्ञानिक चेतना की सबसे बड़ी बाधा बन गई। इस्लामी धर्मशास्त्र का उद्देश्य 'ईश्वर की योजना' को समझना है, जबकि वैज्ञानिक चेतना का उद्देश्य 'प्रकृति की प्रक्रिया' को समझना। जब तक विज्ञान को धार्मिक सत्य की अधीनता में रखा जाएगा, तब तक समाज में स्वतंत्र वैज्ञानिक विवेक और आलोचनात्मक चेतना का पुनर्जागरण कठिन रहेगा।

(यह चर्चा तर्कशील पथ के अगले अंक में भी जारी रहेगी)

जाति-मुक्त महाराष्ट्र के गांव सोन्दला की कहानी

महाराष्ट्र के एक छोटे से इलाके में बसा सोन्दला गांव कभी आम भारतीय गांवों की तरह जाति के आधार पर बंटा हुआ था। गांव में अलग-अलग जातियों के लोग रहते थे, लेकिन उनके मोहल्ले अलग थे, बैठने-खाने की जगह अलग थी और सामाजिक रिश्तों में भी दूरी बनी रहती थी। इस भेदभाव के कारण गांव में आपसी विश्वास कम था और विकास के काम भी धीमे चलते थे।

समय के साथ गांव के कुछ शिक्षित युवाओं, अध्यापकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस स्थिति को बदलने का निश्चय किया। उन्होंने महसूस किया कि जब तक गांव में जाति की दीवारें रहेंगी, तब तक असली विकास संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने गांव के लोगों के बीच बैठकों और चर्चाओं की शुरुआत की। इन बैठकों में वे समानता, मानवता और भाईचारे की बातें करते थे।

शुरुआत में कुछ लोग इस विचार से सहमत नहीं थे। उन्हें डर था कि परंपराएं टूट जाएंगी। लेकिन धीरे-धीरे समझदारी और संवाद के जरिए लोगों का नजरिया बदलने लगा। गांव के बुजुर्गों ने भी महसूस किया कि आने वाली पीढ़ियों को बेहतर समाज देना जरूरी है।

एक दिन गांव की पंचायत में एक ऐतिहासिक निर्णय लिया गया। पंचायत ने घोषणा की कि सोन्दला गांव को जाति-मुक्त गांव बनाया जाएगा। इसका मतलब था कि गांव में किसी भी व्यक्ति के साथ उसकी जाति के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। मंदिर, पानी के स्रोत, स्कूल, श्मशान और सभी सार्वजनिक स्थान सबके लिए समान रूप से खुले होंगे।

इस निर्णय के बाद गांव में कई सकारात्मक पहलें शुरू हुईं। सभी समुदायों के लोग मिलकर सामूहिक भोजन करने लगे। त्योहारों को एक साथ मनाने की परंपरा शुरू हुई। स्कूल में बच्चों को बराबरी, मानवाधिकार और वैज्ञानिक सोच के बारे में पढ़ाया जाने लगा। युवाओं ने गांव की दीवारों पर प्रेरणादायक नारे लिखे जैसे-

''इंसान की सबसे बड़ी पहचान उसकी इंसानियत है''

और

''समानता से ही समाज मजबूत बनता है।''

धीरे-धीरे सोन्दला गांव का माहौल पूरी तरह बदल गया। पहले जहां लोग जाति के आधार पर अलग-अलग रहते थे, अब वे एक परिवार की तरह मिलजुलकर रहने लगे। गांव में विकास के काम भी तेजी से होने लगे-सड़कें बनीं, स्कूल बेहतर हुआ और खेती में नई तकनीकों का इस्तेमाल शुरू हुआ।

आज सोन्दला गांव महाराष्ट्र में समानता और सामाजिक सुधार का एक प्रेरणादायक उदाहरण बन चुका है। आसपास के गांवों के लोग भी यहां आकर देखते हैं कि कैसे आपसी समझ, शिक्षा और सामूहिक प्रयास से समाज की पुरानी बुराइयों को खत्म किया जा सकता है।

सोन्दला की यह कहानी हमें यह सिखाती है कि अगर लोग मिलकर ठान लें, तो जाति-भेद जैसी गहरी सामाजिक समस्या को भी खत्म किया जा सकता है और एक ऐसा समाज बनाया जा सकता है जहाँ हर इंसान को बराबरी और सम्मान मिले।

तर्कशील विचार बा कमाल

मा शमशेर चोरमार

तर्कशील इकाई कालांवाली के पास किसी नज़दीकी गाँव से एक बहुत ही गंभीर प्रकार का एक मामला आया।

कहानी केस हल होने से 17 दिन पहले की है 13 साल के एक लड़के को शाम के समय कोई किडनैप करके (उठाकर) ले गया। किसी तरह वह अपने गाँव से 50 किलोमीटर दूर एक शहर में रात 9 बजे अपहरणकर्ताओं से छूटकर एक होटल वाले से घर फोन कर पाया। उसके माता-पिता उसे ढूँढते-ढूँढते उसके पास पहुँच गए।

वह रो रहा था और डर के मारे कांप भी रहा था। थोड़ी पुलिस कार्रवाई के बाद वह उसी समय घर लौट आए। लड़का बहुत डरा हुआ और सदमे में था वह चुप रहने लगा, बार-बार सिर दर्द, टांगों और बाजुओं में दर्द होने की बात करताज् परिवार को किसी ने सलाह दी कि इसे कुछ सूंघाया गया है, जिसका असर इसके दिमाग पर पड़ गया है। आप इसे किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाओ। यह बात लड़का भी बता रहा था कि मैं बेहोश था, मुझे कुछ भी पता नहीं चल रहा था। जब होश आया तो मेरे सिर पर सफेद कपड़ा था!

पहले डॉक्टर ने थोड़ी दवाई दी, ठीक न होने पर 4-5 दिन बाद दूसरे डॉक्टर के पास गए। उसने सिर और खून के कई टेस्ट करवाए, रिपोर्ट सामान्य आई। एक हफ्ते की दवाई ली, फिर भी ठीक नहीं हुआ। अब दूर के किसी शहर में एक अच्छे डॉक्टर के पास गए। उसने सीटी स्कैन समेत कई टेस्ट करवाए, जिनकी रिपोर्ट भी सामान्य थीं। डॉक्टर ने एक हफ्ते की दवाई दी और कहा कि यह ठीक हो जाएगा, बीमारी या किसी नशे/केमिकल का इस पर कोई असर नहीं है।

खैर, पिछले पाँच दिनों से उस डॉक्टर की दवाई चल रही थी। लड़का ठीक होने की बजाय और उलझता जा रहा था। अब वह चल-फिर भी नहीं पा रहा था, यहाँ तक कि उसे बिस्तर से उठाने के लिए सहारा देना पड़ता। टांग भी हाथों से उठाकर एक तरफ करनी पड़ती और उसकी आवाज़ भी निकलनी लगभग बंद होने लगी। इस दौरान वह कुछ दिनों से बाबाओं, तंत्र-मंत्र करने वालों के पास भी गए। एक-दो ने उनसे अच्छे पैसे भी ऐंठे। वे कहते थे कि एक बाबा फूंक मारकर ठीक कर देता है, उसने बहुत ज्यादा फूंकें मारीं, लेकिन वह ठीक नहीं हुआ।

आखिर किसी ने उन्हें तर्कशील लोगों के पास जाने की सलाह दी... हमारे एक रिश्तेदार के माध्यम से वे कालांवाली मानसिक परामर्श केंद्र आए। उसे दो लोगों ने उठाकर बिस्तर पर लिटाया। वह ज्यादा बात करने की स्थिति में नहीं था, फिर भी हमने ढाई-तीन घंटे तक अलग-अलग तरीकों से काउंसलिंग की। एक जादू की ट्रिक दिखाकर उसका हौसला बढ़ाने की कोशिश की। लड़के से अपहरण के बारे में क्यों, कैसे आदि सवाल नहीं किए गए बल्कि उसके सामने ही घरवालों से कहा गया कि इस विषय पर आगे कोई बात नहीं करनी।

उसकी इच्छाओं और रुचियों को ध्यान में रखते हुए उसे रचनात्मक कामों की ओर मोड़ने के लिए कहा गया। उसकी पक चुकी अर्ध-चेतना को तोड़ने के लिए कुछ गतिविधियाँ करने की जिम्मेदारी दी गई। उसे डर और सदमे से बाहर निकालने के लिए कुछ केस रिपोर्ट साझा की गईं। परिवार के सदस्यों को हिम्मत दी गई और नकारात्मक सोच की जगह सकारात्मक नजरिया अपनाने के लिए प्रेरित किया गया। सम्मोहन करने की योजना सफल नहीं हो पाई क्योंकि वह ज्यादा सहयोग नहीं कर रहा था। लड़के को कुछ दिनों बाद फिर से सेंटर लाने के लिए कहा गया।

कालांवाली से लौटते समय मैं उन्हें अपने साथ घर ले गया। अब वह लड़का मेरे साथ घुलने-मिलने लगा। चाय-पानी पीते समय मैंने उससे कहा कि तुम खुद चलने लगो, मैं तुम्हें घरवालों से मोबाइल दिलवा दूँगा। बस इतनी सी बात पर लड़का पीछे पड़ गया कि मुझे जल्दी मोबाइल दिलवाओ। क्योंकि उसकी रुचियों से पता चला कि उसे मोबाइल का शौक है, लेकिन घर में उसे फोन नहीं दिया जाता।

कहने पर रास्ते में ही उसे नया फोन दिला दिया गया। एक-दो घंटे बाद वह अपने घर जाकर मुझे वीडियो कॉल करता है, जिसमें वह खुद चलने की वीडियो बनाकर कह रहा था-

''सर, मैं ठीक हो गया! अब मैं बिना किसी सहारे के चल सकता हूँ! मेरी आवाज़ भी ठीक हो गई है! मैं जल्दी स्कूल भी जाऊँगा! अगर कोई समस्या हुई तो मैं आपको फोन कर लिया करूँगा!''

इसके बाद उसकी माँ और परिवार के सदस्यों ने फोन पर तर्कशीलों का धन्यवाद किया।

इस तरह तर्कशील/वैज्ञानिक विचारों ने थोड़े ही समय में कमाल कर दिखाया।

9416709342

नगों (रत्नों) को पहनने का पाखंड

–कुलजीत डंगर खेड़ा

जब से मनुष्य ने होश संभाला, तब से उसमें दूसरों को सुंदर बनकर और उनको अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति भी पैदा हुई। प्रारंभ में खुद को सुंदर दिखाने के लिए उसने पक्षियों के पंख सिर पर बांधे , कभी जानवरों की हड्डियाँ गले और बाजुओं में पहनी , चमकदार पत्थरों को आकर्षक मानकर उन्हें अपने शरीर पर धारण किया । फिर जब धातु युग आया, तो उसने विभिन्न धातुओं से बने आभूषणों को पहनना शुरू कर दिया। इन आभूषणों को सुंदर बनाने के लिए, उनमें विभिन्न प्रकार और अलग-अलग रंगों के रत्न जड़े गए। इन रत्नों को महंगी धातुओं के साथ बेचने के लिए, चालाक लोगों ने इन्हे राशि चिन्हों, तथाकथित भाग्य, ग्रहों आदि से जोड़कर धोखाधड़ी का धंधा बढ़ा दिया लिया । इसे ज्योतिष और ग्रह-नक्षत्रों से जोड़कर देखा जाने लगा । कई लोग मानते हैं कि विशेष पत्थर–जैसे नीलम, पुखराज, माणिक या पन्ना–पहनने से जीवन की समस्याएँ दूर हो जाती हैं, भाग्य चमक उठता है और सफलता अपने आप मिलने लगती है। लेकिन क्या यह सच है, या यह केवल एक पाखंड है जो लोगों की आस्था और भय का फायदा उठाकर फैलाया गया है? आओ इसका तार्किक विश्लेषण करें।

नग पहनने की परंपरा और विश्वास : ज्योतिष के अनुसार, हर ग्रह का एक विशेष रत्न होता है–जैसे सूर्य के लिए माणिक, शनि के लिए नीलम और बृहस्पति के लिए पुखराज।



यह कहा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति की कुंडली में कोई ग्रह कमजोर हो, तो उससे संबंधित रत्न पहनने से उसका प्रभाव बढ़ जाता है।

इस विश्वास का आधार पूरी तरह धार्मिक और पारंपरिक है, न कि वैज्ञानिक। सदियों से यह मान्यता लोगों के मन में गहराई तक बैठ गई है, जिससे वे इसे बिना सवाल किए मान लेते हैं।

बच्चों का शोषण

भारत का नग-रत्न उद्योग लगभग 80-85 अरब डॉलर का है और इस कार्य में लाखों लोग लगे हुए हैं जिनमे लगभग 20000 से अधिक बच्चे भी शामिल हैं। इसमें वो नगों को ढूंढ़ने,हीरे की कटिंग, रत्न पॉलिशिंग और आभूषण निर्माण प्रमुख कार्य करते हैं। बच्चों का शोषण खदानों, छोटे कारखानों और घरों में होता है, जहाँ उनसे लंबे समय तक कम मजदूरी पर काम लिया जाता है। वे शिक्षा से भी वंचित हो जाते हैं।

उनकी सेहत पर गंभीर असर पड़ता है–आँखों की कमजोरी, फेफड़ों की बीमारियाँ, त्वचा रोग और थकान। उन्हें धूल, रसायनों, तेज औजारों और खराब रोशनी में काम करना पड़ता है। गिरने, कटने और साँस की समस्या यहां तक कि जान से हाथ धोना जैसे जोखिम होते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण : क्या रत्न वास्तव में असर करते हैं ?

विज्ञान के अनुसार, रत्न केवल खनिज होते हैं, जिनकी अपनी भौतिक और रासायनिक विशेषताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, नीलम (सैफायर) और माणिक (रूबी) दोनों ही एल्युमिनियम ऑक्साइड के रूप हैं, जिनमें केवल रंग का अंतर होता है। कोई भी वैज्ञानिक शोध यह प्रमाणित नहीं करता कि ये पत्थर मानव जीवन, भाग्य या ग्रहों की स्थिति को प्रभावित कर सकते हैं। ग्रह लाखों-करोड़ों किलोमीटर दूर हैं, और उनका प्रभाव केवल गुरुत्वाकर्षण और विकिरण तक सीमित होता है, जिसे एक छोटी सी अंगूठी का पत्थर बदल नहीं सकता।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव : प्लेसबो

अक्सर लोग कहते हैं कि रत्न पहनने के बाद उनका

जीवन बदल गया। इसका कारण वास्तव में ''प्लेसबो प्रभाव'' हो सकता है। प्लेसबो प्रभाव वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति किसी चीज़ पर विश्वास करने के कारण खुद में सकारात्मक बदलाव महसूस करता है, भले ही वह चीज़ वास्तव में प्रभावी न हो। जब कोई व्यक्ति यह मान लेता है कि उसकी अंगूठी उसे भाग्यशाली बना रही है, तो उसका आत्मविश्वास बढ़ जाता है और वह बेहतर निर्णय लेने लगता है। परिणामस्वरूप, उसे सफलता मिलने लगती है–लेकिन इसका श्रेय वह रत्न को दे देता है।

आर्थिक शोषण का साधन

रत्नों का बाजार बहुत बड़ा है, और इसमें भारी मुनाफा कमाया जाता है। ज्योतिषी और व्यापारी अक्सर लोगों के डर और असुरक्षा का फायदा उठाकर महंगे पत्थर खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं।

''आप पर शनि की साढ़ेसाती है, नीलम पहन लें''

''बृहस्पति कमजोर है, पुखराज पहनना जरूरी है''

ऐसे सुझाव देकर हजारों-लाखों रुपये के रत्न बेचे जाते हैं। कई बार ये पत्थर नकली भी होते हैं, जिससे लोगों का आर्थिक भी नुकसान होता है।

तर्क और वास्तविकता

यदि रत्न वास्तव में भाग्य बदल सकते, तो सभी अमीर और सफल लोग इन्हें पहनते गरीब और परेशान लोग केवल रत्न पहनकर अमीर बन जाते।

विज्ञान और चिकित्सा की जरूरत कम हो जाती, जो लो इन नगों को इक्कठा करतें है या इनमें चमक लाने के लिए तराशतें है वह वैसे कि तैसे ही गरीब रहते हैं हलाकि उनके पास तो हर तरह के नग होतें हैं।

लेकिन वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग है। सफलता कड़ी मेहनत, शिक्षा, सही निर्णय और अवसरों पर निर्भर करती है न कि इन नगों या रत्नों पर।

अंधविश्वास का सामाजिक प्रभाव

नग पहनने का यह अंधविश्वास समाज में कई नकारात्मक प्रभाव डालता है, लोग समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक तरीके से ढूँढने के बजाय अंधविश्वास में उलझ जाते हैं। गरीब लोग भी महंगे रत्न खरीदने के लिए कर्ज तक ले लेते हैं। इस चक्कर में उनका बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान भी होता है। चालाक लोगों द्वारा लोगों में भय और असुरक्षा पैदा करके यह विश्वास दिलाया जाता है कि बिना रत्न के उनका जीवन खराब हो जाएगा।

इतिहास और संस्कृति का प्रभाव

यह भी सच है कि रत्नों का उपयोग प्राचीन समय से होता आया है, लेकिन उस समय विज्ञान इतना विकसित नहीं था। लोग प्राकृतिक घटनाओं को समझ नहीं पाते थे, इसलिए उन्होंने इन्हें धार्मिक और ज्योतिषीय रूप दे दिया।

आज के आधुनिक युग में, जब हमारे पास वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीक है, तब भी इन पुरानी मान्यताओं को बिना जांचे-परखे मानना तर्कसंगत नहीं है।

क्या करें ?

किसी भी समस्या का समाधान वैज्ञानिक और व्यावहारिक तरीके से खोजें, ज्योतिष या रत्नों पर निर्भर होने के बजाय अपने कौशल और मेहनत पर भरोसा करें, बच्चों को तार्किक सोच और वैज्ञानिक दृष्टिकोण सिखाएं, अंधविश्वास फैलाने वालों से सावधान रहें। हमें यह समझने की जरूरत है कि जीवन की समस्याओं का समाधान किसी पत्थर में नहीं, बल्कि हमारे ज्ञान, मेहनत और सही सोच में छिपा है। जब हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हैं, तभी हम अंधविश्वासों से मुक्त होकर एक बेहतर और प्रगतिशील समाज की ओर बढ़ सकते।

देश हित

– असगर वजाहत –

आजादी से पहले, देशभक्त अंग्रेजों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करते थे। वे लाठियों, डंडों और गोलियों से लड़ते थे। वे जेलें भरते थे, वे फांसी पर चढ़ जाते थे। लेकिन...

आज के 'देशभक्त' क्या कर रहे हैं?

वे पुराने देशभक्तों को फांसी के फंदे से उतार रहे हैं!

क्यों?

ताकि उन्हें दोबारा फांसी दी जा सके।

*

पहले देशभक्त लोग लोगों से कहते थे कि तुम हमें खून दो, हम तुम्हें आजादी देंगे।

आज के 'देशभक्त' क्या कहते हैं?

आप हमें वोट दें, हम आपको साड़ियां, अनाज, लैपटॉप, साइकिल और पैसे देंगे।

क्या मृत्यु के बाद जीवन है ?

–डॉ. अब्राहम टी. कावूर

मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि मेरी आत्मा मेरे शरीर के किसी विशिष्ट स्थान पर स्थित है। मेरे शरीर की सभी जीवित कोशिकाओं (cells) में जीवन है और यह ऑक्सीजन की सहायता से कोशिकाओं में निरंतर होने वाली रासायनिक अभिक्रिया द्वारा कायम रहता है। यह रासायनिक अभिक्रिया रक्त परिसंचरण और श्वास द्वारा निरंतर चलती रहती है। यह मोमबत्ती के कार्बनिक यौगिकों के जलने से उत्पन्न प्रकाश ऊर्जा के समान है। जब मोमबत्ती बुझ जाती है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो उससे ऊष्मा और प्रकाश अलग हो गए हों, लेकिन जब उसे फिर से जलाया जाता है, तो यह भ्रम दूर हो जाता है।

यह केवल रासायनिक अभिक्रियाओं और ऊर्जा का पैदा होना और रुकना है। जब मेरी मृत्यु श्वास और रक्त संचार रुकने से होगी, तो मेरे शरीर से कुछ भी बाहर नहीं निकलेगा। यदि किसी आधुनिक तकनीक से मेरे मृत शरीर को पुनर्जीवित किया भी जाए, तो यह सोचना मूर्खता होगी कि पृथक आत्मा मेरे शरीर में पुन: प्रवेश कर गई है।

मेरी मृत्यु अचानक ही और एक निश्चित समय पर नहीं होगी। मेरी मृत्यु 70 वर्ष पहले ही शुरू हो चुकी है। मैंने अपनी माँ के गर्भ में एक परजीवी के रूप में अपना जीवन शुरू किया था और जन्म के बाद मुझमें प्रतिदिन लाखों कोशिकाएँ जन्म लेती हैं और लाखों मर जाती हैं। उस दिन से मैं प्रतिदिन मरता और जन्म लेता रहा हूँ। मेरे शरीर की बड़ी संख्या में मृत कोशिकाएँ टूटे और कटे बालों, त्वचा, नाखून काटने और दाँत निकलने की प्रक्रिया के माध्यम से शरीर से बाहर निकल गई हैं, और लाखों अन्य परिवर्तित आंतरिक कोशिकाएँ मूत्र और पसीने के माध्यम से बाहर निकल गई हैं।

मेरे 70 वर्षीय शरीर के अधिकांश अंग दुर्घटनाओं से क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। घावों, जीवाणु और विषाणु रोगों, शारीरिक और मानसिक परिश्रम, सूर्य के प्रकाश और प्रयोगशाला में काम करते समय नमक और अम्ल के कारण मेरा शरीर नष्ट हुआ है। एक बार ऑपरेशन के दौरान मेरे शरीर का एक हिस्सा काट दिया गया था। 40 साल पहले मेरे शरीर की एक सूक्ष्म कोशिका मेरे शरीर से अलग हो गई और एक बाहरी कोशिका के साथ मिलकर मेरे शरीर के बाहर बढ़ने लगी। यह कोशिका आज भी पेरिस में डॉ. एरिस कैवूर के नाम से फल-फूल रही है।

मेरी जवानी में, मेरे शरीर में कोशिकाओं के बनने की दर उनकी मृत्यु की दर से कहीं अधिक थी। इसलिए मेरा विकास होता रहा और मैं 40 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते 185 पाउंड का हो गया। कुछ समय तक मेरा यह अधिकतम वजन बना रहा, जब तक कि कोशिकाओं के बनने की दर उनकी मृत्यु की दर के बराबर रही। उसके बाद, कोशिकाओं के मरने की दर उनके बनने की दर से कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ने लगी और अब मेरा वजन केवल 125 पाउंड है। मेरे शरीर से अलग होकर मृत हो चुकी सभी कोशिकाओं का कुल वजन लाखों पाउंड होगा। मृत्यु की यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक मेरे शरीर में कोशिकाओं के बनने की प्रक्रिया बंद नहीं हो जाती।

मेरे शरीर की सभी कोशिकाएँ मर जाने के बाद भी, मेरी आँख की पुतली (कॉर्निया) किसी अजनबी की आँखों में जीवित रहेगी। मेरे वर्तमान 125 पाउंड के शरीर की मृत्यु मेरे निरंतर जीवन-मृत्यु के चक्र में एक महत्वपूर्ण घटना होगी। क्योंकि मेरा मस्तिष्क काम करना बंद कर देगा और मेरा व्यक्तित्व और जीवनकाल समाप्त हो जाएगा।

मेरी आखिरी सांस भी इस सांस से अलग नहीं होगी। मैं कार्बन डाइऑक्साइड और जल वाष्प बाहर निकालूंगा, ठीक वैसे ही जैसे अभी निकाल रहा हूं।

मुझे यह विश्वास नहीं है कि मेरी मृत्यु के बाद, मुझमें कोई आत्मा या रूह रह जाती है, कि मैं नरक या स्वर्ग जाऊँगा या पुनर्जन्म की प्रतीक्षा में किसी भूत की तरह भटकता रहूँगा। यदि कोई तथाकथित आत्मा है भी, तो उसका एक बड़ा हिस्सा मेरे शरीर से उन कोशिकाओं के साथ निकल चुका होगा जो पहले ही मुझे छोड़ चुकी हैं। कुछ हिस्सा उस व्यक्ति को मिलेगा जिसकी आँखें मेरी मृत्यु के बाद काम आ सकेंगी।

मैं एक अत्यंत विकसित प्राणी हूँ, एक व्यक्तित्व हूँ, क्योंकि मेरे पास मस्तिष्क, श्वसन तंत्र, परिसंचरण तंत्र और पाचन तंत्र है। लेकिन अपनी माँ के गर्भ में अपने जीवन के प्रारंभिक चरणों में, जब मेरा मस्तिष्क अभी कार्य करना शुरू नहीं किया था, मैं पौधों या निम्न स्तर के जानवरों के स्तर पर था। जब मैं अपनी माँ के गर्भ में था, यदि मेरी जन्म की मूल कोशिका दो भागों में टूट जाती, तो मेरे एक या दो समरूप भाई होते और मेरी पहली तथाकथित आत्मा या व्यक्तित्व दो या तीन भागों में विभाजित हो जाता।

हालांकि ये अवधारणाएँ पूरी तरह से सही और तार्किक हैं, फिर भी जिन लोगों का मन आत्मा और पुनर्जन्म के विचारों से प्रभावित है, वे इन सिद्धांतों को पूरी तरह से नकार देंगे क्योंकि ये सिद्धांत धर्मों की शिक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं। इसलिए, यद्यपि सभी धार्मिक शिक्षाएँ कहती हैं कि मृत्यु के बाद जीवन है, मेरे पास इस पर विश्वास करने का न तो कोई कारण है और न ही कोई ठोस प्रमाण।

7 जून को जब मैं वेस्ली कॉलेज में व्याख्यान दे रहा था, तब श्रोताओं में बैठे एक प्रोफेसर ने मुझसे पुनर्जन्म के बारे में पूछा। मेरे अनुरोध पर, एक व्यक्ति मेरी कार से सिगरेट का डिब्बा ले आया, जिसमें एक बिना सिर वाला कीड़ा था। 22 मई को, अगले दिन के व्याख्यान की तैयारी में, मैंने इस कीड़े का सिर अलग कर दिया था। डिब्बा खोलने पर, 16 दिन बाद भी बिना सिर वाला कीड़ा नाचने और उछलने लगा। यदि पुनर्जन्म एक वास्तविकता होती, तो 16 दिन पहले मृत हुए कीड़े का सिर किसी और स्थान पर पुनर्जन्म लेता, और उसका शरीर, जो कुछ दिनों में मरने वाला था, कहीं और पुनर्जन्म लेता। एक ही प्राणी दो स्थानों पर कैसे पुनर्जन्म ले सकता है?

मिस्टर सेना नामक एक व्यक्ति के अनुसार, कोशिकीय जीवन और एक अन्य प्रकार के जीवन में अंतर है, जिसे वे जीवन का सार या शाश्वत जीवन कहते हैं। उनका मानना है कि यह जीवन समय और स्थान से परे जाकर अंततः एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। मुझे यह समझ नहीं आया कि जो जीवन ''अस्तित्वहीन'' हो जाता है, उसे 'शाश्वत जीवन' कैसे कहा जा सकता है? जीवन की उत्पत्ति एक कोशिका से हो सकती है या यह अनेक कोशिकाओं से मिलकर बना हो सकता है। एक कीट, मनुष्य और पौधे के जीवन में कोई अंतर नहीं है। अंतर केवल मानसिक विकास में है, जीवन में नहीं। जैसे-जैसे मस्तिष्क का विकास होता है, वैसे -वैसे इसके गुण बदलते रहते हैं। यहाँ तक कि आलू के पौधे में भी मस्तिष्क नहीं होता और कीटों में भी नहीं होता, जबकि मनुष्य का मस्तिष्क पूर्णतः विकसित होता है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मनुष्य इस ब्रह्मांड का सबसे बुद्धिमान प्राणी है।

कुछ सिरविहीन कीड़े न केवल प्रजनन करते रहते हैं, बल्कि उनका मस्तिष्क भी छोटा होता है, क्योंकि उनके शरीर में एक के स्थान पर कई तंत्रिका केंद्र होते हैं। यदि मैं इन कीड़ों के दो सिरविहीन शरीर, एक मादा और एक नर, को एक साथ रखूँ, तो उनमें निषेचन होगा और मादा अंडे देगी, जिनसे सिर वाले कीड़े उत्पन्न होंगे। वे निषेचन की प्रक्रिया से अवगत होते हैं, क्योंकि उनमें मस्तिष्क होता है, भले ही वह छोटा हो। वीररत्ने नामक एक व्यक्ति ने कहा कि ''जीवन के प्रारंभिक चरणों में, निषेचन द्वारा जन्म में पुनर्जन्म शामिल नहीं होता है।'' उनके इस स्पष्टीकरण का वैज्ञानिक आधार ज्ञात नहीं है। उनका कहना है कि ''पुनर्जन्म केवल उन्हीं जीवों में होता है जिनका मस्तिष्क अधिक विकसित होता है।''

शायद इस व्यक्ति को यह नहीं पता कि कोएलेंटेरेट (Colenterate) नामक एक जीव होता है, जिसका मस्तिष्क होता है। इसे कई टुकड़ों में काटा जा सकता है। इसका प्रत्येक टुकड़ा जीवित रहता है और एक कोएलेंटरेट बन जाता है। क्या जन्म लेने वाले कोएलेंटरेट में उनकी पुनर्जन्मित आत्मा का कुछ अंश होगा? यदि मानव अंडाणु को चार भागों में विभाजित किया जाए, तो क्या इस प्रकार जन्म लेने वाले चौगुने बच्चों में पुनर्जन्मित आत्मा का कुछ अंश होगा? कितना बेतुका है!

मिस्टर लियानेज नामक एक व्यक्ति ने अलौकिक शक्तियों और बच्चों में जन्मजात विशिष्टताओं के माध्यम से पुनर्जन्म को सिद्ध करने का प्रयास किया है। जन्मजात विशिष्टताओं को कर्म और पुनर्जन्म के बजाय आनुवंशिकी और वंशानुक्रम के माध्यम से बेहतर ढंग से समझाया जा सकता है। मनुष्य ने चयनात्मक प्रजनन के द्वारा पालतू पशुओं में बहुत अच्छे गुणों वाली संतानें उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार, मुर्गियों और

गायों की नस्ल में सुधार हुआ है। यह सब केवल आनुवंशिकी और वंशानुक्रम के क्षेत्र में मनुष्य के ज्ञान के अनुप्रयोग के कारण ही संभव हुआ है। पशुओं में ये परिवर्तन कर्म के कारण नहीं बल्कि जीन और डीएनए अणुओं के कारण होते हैं।

वह समय दूर नहीं जब मनुष्य प्रजनन के अपने ज्ञान का उपयोग अपनी नस्ल को बेहतर बनाने के लिए करेगा। भविष्य में, सरकारें प्रजनन संबंधी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि शारीरिक रूप से अपूर्ण या कमजोर लोगों को अपनी यौन इच्छाओं को पूरा करने से रोका जाएगा, बल्कि सरकार ऐसे कदम उठा सकती है जिससे ऐसे लोग संतान उत्पन्न न कर सकें। मानव प्रजनन राष्ट्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन सकता है, जिसके लिए विशेषज्ञ वैज्ञानिकों और दूरदर्शी नेताओं द्वारा उचित मार्गदर्शन और नियंत्रण की आवश्यकता होगी। यहां तक कि विवाहित जोड़ों को संतान उत्पन्न करने के लिए 'प्रजनन मंत्रालय' से अनुमति लेनी पड़ सकती है।

रक्त बैंकों की तरह, पूरे देश में शुक्राणु बैंक भी खोले जा सकते हैं ताकि अच्छे पुरुषों के शुक्राणु संरक्षित किए जा सकें, जिनका उपयोग अच्छी महिलाओं को गर्भवती करने के लिए किया जाएगा। इस तरह, जब पुरुष अपने बच्चों की नस्ल सुधारने के लिए चयनात्मक प्रजनन विधियों का उपयोग करेंगे, तो वर्तमान की तुलना में कहीं अधिक असाधारण क्षमताओं वाले बच्चे पैदा होंगे। आजकल ऐसे बच्चे बहुत कम ही पैदा होते हैं। क्योंकि श्रीलंका के अधिकांश लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। तो क्या हमारी सरकार यह सोचेगी कि कृषि और पशु अनुसंधान विभाग को वर्तमान नस्ल सुधार विधियों के बजाय उनके पिछले कर्मों के आधार पर पौधों और जानवरों की नस्लों का चयन करने का निर्देश देना आवश्यक है?

यह कहना कि असाधारण बच्चों को पिछले जन्मों की यादें होती हैं, उतना ही गलत है जितना कि पुनर्जन्म पर शोध करने वाले प्रोफेसर इयान स्टीवेन्सन, प्रोफेसर एच.एन. बनर्जी और गुनारत्ने का यह मानना कि चेहरे की बनावट, रंग, चोटों के निशान आदि पुनर्जन्म में फिर से प्रकट होते हैं। यदि यह सच है, तो नेत्रदान करने वाले समाज के लिए यह बहुत घातक साबित होगा। जन्म से अंधे होने का डर लोगों को नेत्रदान करने से रोकेगा। यदि यह दावा सच है कि गणित का ज्ञान पिछले जन्मों से प्राप्त होता है, तो वह दिन दूर नहीं जब पिछले जन्म में गणित का विशेषज्ञ, भले ही अब के जन्म में वह गधा हो, लंका विश्वविद्यालय के गणित विभाग का प्रमुख हो और प्रोफेसर की कुर्सी पर आसीन हो सकता है।

बच्चों की पूर्व जन्मों की यादों से जुड़ी कहानियों को पूरी तरह से काल्पनिक मानकर खारिज कर देना चाहिए। जिन लोगों ने वैज्ञानिक रूप से इन चीजों की जांच की है, वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ये कहानियां पूरी तरह से झूठी हैं और इनके पीछे किसी न किसी प्रकार का छल अवश्य है।

जीव विज्ञान के बारे में बहुत कम जानकारी रखने वाले श्री लियानेज का मानना है कि पुनर्जन्म की पहली शर्त एक जीवित मस्तिष्क है। एक जीवाणु, अंडे, आलू या कोशिका में मस्तिष्क का क्या काम? नई खोजों से पता चला है कि मृत्यु से पहले या उसके तुरंत बाद शरीर को बहुत कम तापमान पर जमाया जा सकता है और सैकड़ों वर्षों बाद भी उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। क्या उस प्राणी की आत्मा किसी दूसरे प्राणी में प्रवेश करती है या उसी प्राणी में लौट आती है? क्या जमे हुए वस्तुओं के मस्तिष्क सदियों तक जीवित रहते हैं? कितना बेतुका है! पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले ये अंधविश्वासी लोग तर्क देते हैं कि मरते हुए व्यक्ति के अंतिम विचार अगले जीवन से जुड़े होते हैं। इस तर्क को साबित करने के लिए वे पदार्थ और ऊर्जा के नश्वर होने के नियम का हवाला देते हैं।

यह कहना कि किसी व्यक्ति के विचार उसकी मृत्यु के बाद भी उसके शरीर में बने रहते हैं, उतना ही गलत है जितना यह कहना कि किसी व्यक्ति की आत्मा उसके मरने से पहले पहने हुए कोट में रहती है, या यह कहना कि मुर्गा खाने के बाद भी खाने वाले के पेट में जीवित रहता है।

यदि आत्माओं का पुनर्जन्म मस्तिष्क के बाहर हो सकता है, तो हमारे ग्रह पर जीवन की शुरुआत से पहले वे कहाँ थीं? क्या विचार बिना विचारक के, स्मृति बिना मनुष्य के और चेतना बिना सचेत मनुष्य के अस्तित्व में रह सकती है? जैसे ईंधन के बिना आग नहीं जल सकती, वैसे ही शरीर और संचार प्रणाली के बिना जीवन और मन का अस्तित्व नहीं हो सकता। मृत्यु ही जीवन का अंत है।

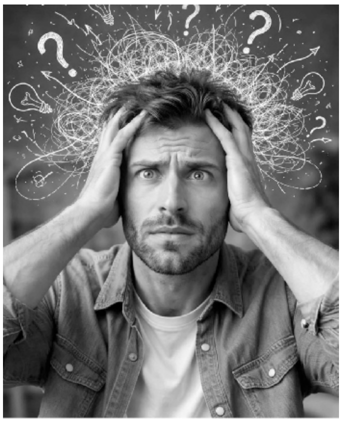
सिजोफ्रेनिया : मन मन के सवाल

-डॉ नरेंद्र दाभोलकर, डॉ हामिद दाभोलकर

तर्कशील पथ के मार्च-अप्रैल के अंक में शिजोफ्रेनिया के बारे मे अलग-अलग प्रश्नों के जवाब दिए थे, यह प्रश्नों की कड़ी इस अंक में भी जारी है।

हमारी लड़की मनीषा 22 साल की है। चार साल पहले उसकी सिजोफ्रेनिया की बीमारी का निदान हुआ। हम नियमित रूप से उसका इलाज करा रहे हैं और पिछले एक साल से उसकी बीमारी अच्छी तरह से नियंत्रण में है। क्या हमें उसकी शादी के बारे में सोचना चाहिए?

मनोविकार विशेषज्ञ की भूमिका हमेशा यही होती है कि मरीज के परिवारजनों को बीमारी और मरीज की स्थिति के संदर्भ में विस्तृत जानकारी देकर उसका लाभऔर नुकसान बताना और उचित निर्णय लेने के लिए सहयोग करना, किंतु अंतिम निर्णय मरीज के परिवारजनों को ही लेना होता है।



विवाह के बाद बढ़नेवाली पारिवारिक जिम्मेदारियों को सँभालने के लिए वह व्यक्ति सक्षम है तो कानूनन वह व्यक्ति विवाह के लिए पात्र समझा जाता है। इन जिम्मेदारियों में मुख्यत: व्यक्ति के लिंगानुरूष समाजमान्य जिम्मेदारियाँ सँभालने की व्यक्ति की क्षमता महत्त्वपूर्ण घटक होती है। जैसे, पुरुष को अर्थोपार्जन करना, स्त्री को परिवार के रोजमर्रा के काम करना, खाना बनाना, बच्चों की परवरिश करना ऐसी जिम्मेदारियों के संदर्भ में सोचना होगा। सामाजिक और निजी संदर्भों के अनुरूप ये जिम्मेदारियाँ बदल सकती हैं। इसके सिवाय रिश्ते जोड़ना, उन्हें निभाना, लैंगिक संबंधों के प्रति सक्षम होना ये भी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। खुद की और परिवार की जिम्मेदारी लेने की मरीज की मानसिक स्थिति नहीं है तो उसका विवाह करना समस्या हल करने की अपेक्षा समस्या बढ़ानेवाला साबित होता है।

कई बार हमारे समाज में यह धारणा होती है कि विवाह करने से या कोई जिम्मेदारी सौंपने से व्यक्ति की मानसिक बीमारी ठीक हो जाएगी। यह सोचकर तथा अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होने के लिए अभिभावक मरीज का विवाह करते हैं। इससे समस्या का समाधान होने की अपेक्षा नई समस्या तैयार होती है क्योंकि विवाह के बाद मनोविकार की बीमारी ससुराल के लोगों को पता चलती है, परिणामस्वरूप उनके मन में हमें फँसाया गया ऐसी भावना का निर्माण होता है और इसके बाद पुलिस केस, मुकदमा ऐसी बातें होती हैं और इससे समस्याएँ बहुत बढ़ती हैं।

सालों से जड़े हुए मनोविकार के बारे में विवाह तय करते समय होनेवाले साथी को और उसके परिवारवालों को बताना चाहिए या नहीं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। उन्हें कुछ भी बिना बताए विवाह करना उनके साथ धोखाधड़ी है। साथ ही ससुरालवालों को टालकर इलाज जारी रखना यह भी महिलाओं के लिए संभव नहीं है। आगे गर्भधारण के समय दवाइयाँ लेनी चाहिए क्या? किस प्रकार लेनी चाहिए? ऐसे कई प्रश्न निर्माण होते हैं। दूसरी ओर विवाह के पूर्व मनोविकार की जानकारी दी तो मनोरोगी के साथ कौन विवाह करनेवाला है? यह सवाल भी पैदा होता है।

मनोविज्ञान के अनुसार संभावित साथी और उसके परिवारजनों को बीमारी तथा इलाज के संदर्भ में सचाई बताना जरूरी है। आवश्यकता के अनुसार इस कार्य में आपको मनोविकार विशेषज्ञ की सहायता मिलती है।

एक-दूसरे की सचाई जानने के बाद बना हुआ रिश्ता कायम रहने की संभावना होती है। धोखाधड़ी पर निर्भर रिश्ते सामान्यत: लंबी अवधि तक टिकते नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अपने होनेवाले साथी और उसके परिवारजनों के मन में मानसिक विकार के संदर्भ में जो शंकाएँ और गलतफहमियाँ हैं उन्हें दूर करना भी महत्त्वपूर्ण है। बीमारी की तीव्रता ज्यादा है तो विवाह की जिम्मेदारी न लेना ही उचित है। उपरोक्त विचारों के बाद आप अपने मनोविकार विशेषज्ञ से सलाह-मशविरा करके अपनी लड़की के विवाह का निर्णय लीजिए।

मेरे भाई को विगत 15 वर्षों से सिजोफ्रेनिया की बीमारी है। उसकी नियमित दवाइयाँ चालू हैं और उसका शॉक ट्रीटमेंट भी किया गया। लेकिन इलाज के बाद भी

उसकी संदेह की भावना तथा भ्रम-विभ्रम कम नहीं हुआ है। वह दिनभर घर में ही बैठा रहता है। कुछ भी काम करता नहीं है। कई डॉक्टरों को दिखाया भी, आगे हमें क्या करना चाहिए, कुछ समझ में नहीं आ रहा है ?

सिजोफ्रेनिया की बीमारी एक उग्र प्रकार का मानसिक विकार है, यह हमने इसके पूर्व ही देखा है। जितना संभव हो सके उतना जल्दी, नियमित उचित इलाज से अधिकांशत: सिजोफ्रेनिया का विकार नियंत्रण में आ सकता है। किंतु सामान्यत: इन मरीजों में से पाँच प्रतिशत मरीज ऐसे होते हैं जो इलाज के लिए आवश्यक सहयोग नहीं देते हैं। इलाज करनेवाले डॉक्टर और सहारा देनेवाले परिवारजनों के लिए ऐसे मरीज एक बहुत बड़ी चुनौती होते हैं।

गंभीर माने जानेवाली सिजोफ्रेनिया की बीमारी के लिए असरदार दवाइयाँ उपलब्ध हैं। जैसे, क्लोजाधीन दवा का इस्तेमाल नहीं किया है तो डॉक्टर की सलाह से यह दवाई लेनी चाहिए। यह एक विकल्प हो सकता है। कई बार यह भी विकल्प रहता है कि अपने मौजूदा डॉक्टर की सलाह से ही किसी अन्य मनोविकार विशेषज्ञ की राय लेना, जिससे इलाज के संदर्भ में कुछ नई सोच बन सकती है।

उपरोक्त सभी प्रकार के इलाजों के बाद भी अगर मरीज के लक्षण पूर्णत: नियंत्रण में नहीं आ रहे हैं तो धीरे-धीरे क्यों न हो किंतु मौजूदा हालात को स्वीकार करना परिवारवालों की दृष्टि से आवश्यक होता है। जिससे हम बार-बार प्रयास कर रहे हैं किंतु कुछ सफलता नहीं मिल रही है, इस भूमिका से आनेवाली निराशा की भावना हमने आवश्यक प्रयास किए हैं और यह बीमारी कुछ हद तक नियंत्रण में है, इस सकारात्मक भावना में रूपांतरित होती है। अपनी समग्र ताकत मरीज के ठीक होने पर खर्च करने की अपेक्षा लंबी अवधि के इलाज के लिए अपनी मानसिकता तैयार करना जरूरी है। देहातों में सामान्यत: संयुक्त परिवार पद्धति, कृषिप्रधान संस्कृति, संयमित ग्राम्य जीवन ऐसे हालत में मरीज को संभालना आसान होता है, तो शहरी इलाके में ऐसे मरीज की दिनभर देखभाल करनेवाले 'डे केयर सेंटर' में मरीज की उचित देखभाल की जाती है। 'डे केयर सेंटर' की इलाज पद्धति का कई मरीजों को लाभ हो सकता है।

इसके साथ ही मरीजों और उनके रिश्तेदारों द्वारा इकट्ठे होकर स्थापित किए गए 'स्वसहाय समूह' का भी ऐसी स्थिति में लाभ हो सकता है।

आजकल यह सोच बन गई है कि मनोविकार चिकित्सालय जैसे लंबी अवधि के इलाज केंद्रों में मरीज को रखना टालना चाहिए। परिवार और समाज से दूरके इलाज केंद्रों में लिए गए इलाज से लाभ की अपेक्षा नुकसान ही अधिक होता है, ऐसा विश्वस्तरीय अनुसंधान दावा करता है। मरीज के स्वास्थ्य की देखभाल करते समय परिवारजनों को खुद के भावनिक स्वास्थ्य की देखभाल करना भी बहुत जरूरी है।

आपने परिवारजनों की मानसिकता का उल्लेख किया। खुद मुझे भी भाई की 15 साल की तकलीफदेह बीमारी की वजह से थकान महसूस हो रही है। ऐसा लगता है मेरी ही कोई देखभाल करे तो ठीक होगा।

उग्र प्रकृति के किसी मानसिक विकार से ग्रस्त मरीज के परिवारजनों में यह अधिकांशत: दिखाई देनेवाली भावना है। इसलिए ऐसा केवल आपको ही लगता है ऐसा आप मत सोचिए। इलाज के बाद भी नियंत्रण में न आनेवाली सिजोफ्रेनिया जैसी कुछ बीमारियाँ सचमुच मरीज के रिश्तेदारों के लिए एक चुनौती होती हैं। हम नियमित प्रयास कर रहे हैं किंतु कुछ भी विशेष बदलाव नहीं हो रहा है, यह भावना स्वीकृत करने के लिए कठिन होती है। ऐसी स्थिति में उपरोक्त बीमारी की सचाई को स्वीकार करने से निश्चित ही कुछ मात्रा में भावनिक स्वस्थता मिल सकती है।

मरीज की देखभाल करनेवाले व्यक्ति की भी कुछ जरूरतें होती हैं। उनकी पूर्ति करना उसका अधिकार है, यह समझना जरूरी है। नहीं तो ऐसे व्यक्ति को खुद के लिए समय देना भी अपराधबोध प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को मरीज की लंबी अवधि की बीमारी को ध्यान में रखकर अपनी समग्र ऊर्जा एक साथ व्यय न करके उसे धीरे-धीरे इस्तेमाल करना महत्त्वपूर्ण होता है।

किसी एक व्यक्ति द्वारा यह समग्र जिम्मेदारी उठाने की अपेक्षा अन्य कुछ रिश्तेदारों में भी इस जिम्मेदारी को बाँटना चाहिए। इससे सभी रिश्तेदारों को नई ऊर्जा से काम करने के लिए आवश्यक आराम मिल सकता है। साथ ही मरीज को समय-समय पर डॉक्टर अथवा समुपदेशक के सामने अपनी भावना खुले मन से अभिव्यक्त करना भी जरूरी होता है। कई बार खुले मन से संवाद प्रस्थापित करने से भी भावनिक अस्वस्थता कम हो सकती है।

मरीज के रिश्तेदारों के लिए कार्य करने वाला स्वयं सहायता समूह भी एक अच्छा विकल्प है जिसकी मदद ली जा सकती है और मरीज के रिश्तेदारों के लिए काम करनेवाले सहायता समूह का भी हम उपयोग कर सकते हैं।

(अगले अंक में भी जारी रहेगा)

भारत की विचित्र और अंधविश्वासी प्रथाएं: आस्था, डर और परंपरा का एक जटिल ताना-बना

-अभिषेक पाठक

भारत एक ऐसा देश है जिसे 'विविधता में एकता' का प्रतीक माना जाता है। यहाँ की संस्कृति, भाषा और धर्म की गहराई दुनिया भर के पर्यटकों और शोधकर्ताओं को आकर्षित करती है। लेकिन इस भव्यता के पीछे एक ऐसा पक्ष भी है जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। भारत के सुदूर गांवों से लेकर आधुनिक शहरों की गलियों तक, कई ऐसी विचित्र अंधविश्वासी प्रथाएं आज भी जीवित हैं, जो आश्चर्यचकित करने के साथ-साथ कभी-कभी विचलित भी करती हैं।

- यह लेख भारत की उन गहरी जड़ों वाली प्रथाओं का विश्लेषण करता है जो आस्था और अंधविश्वास के बीच की धुंधली रेखा पर टिकी हैं।

1. छतों से बच्चों को फेंकने की प्रथा (कर्नाटक और महाराष्ट्र)

- दक्षिण भारत और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में 'बेबी टॉसिंग' (Baby Tossing) की प्रथा सदियों पुरानी है। कर्नाटक के गुलबर्गा में 'बाबा उमर दरगाह' और महाराष्ट्र के सोलापुर में यह प्रमुखता से देखी जाती है। यहाँ नवजात शिशुओं को करीब 30 से 50 फीट की ऊँचाई से नीचे फेंका जाता है, जहाँ नीचे खड़े लोग एक चादर तानकर उन्हें सुरक्षित पकड़ते हैं।

- मान्यता: स्थानीय लोगों का मानना है कि इस प्रथा से बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा रहता है, उसकी आयु लंबी होती है और परिवार पर अल्लाह या ईश्वर की कृपा बनी रहती है। यद्यपि बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने इस पर कड़ा विरोध जताया है, लेकिन धार्मिक भावनाओं के कारण इसे पूरी तरह बंद करना एक चुनौती बना हुआ है।

2. मेढकों की शादी: वर्षा के लिए प्रार्थना (असम और वाराणसी)

- भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी खेती काफी हद तक मानसून पर निर्भर है। जब बारिश में देरी होती है, तो उत्तर प्रदेश, असम और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में मेढकों की शादी करवाई जाती है। इसे 'मेंढक बियाह' कहा जाता है।

- मान्यता : प्राचीन लोककथाओं के अनुसार, मेढक इंद्र देव (वर्षा के देवता) के दूत माने जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि मेढकों की शादी से प्रसन्न होकर इंद्र देव वर्षा करते हैं। इस रस्म में बाकायदा पंडित बुलाए जाते हैं, मेढकों को हल्दी लगाई जाती है और उन्हें नए कपड़े पहनाकर विवाह की सभी रस्में निभाई जाती हैं। हाल ही में, जब अत्यधिक वर्षा हुई, तो कुछ स्थानों पर मेढकों का 'तलाक' भी करवाया गया ताकि बारिश रुक सके।

3. जानवरों के साथ विवाह : कुंडली के दोष निवारण

- झारखंड, ओडिशा और छत्तीसगढ़ के कई आदिवासी इलाकों में यदि किसी बच्चे के ऊपरी मसूड़े में दांत पहले निकल आए या कुंडली में 'मांगलिक दोष' हो, तो उसका विवाह कुत्ते या बकरी से कर दिया जाता है।

- मान्यता : ऐसा माना जाता है कि उस व्यक्ति पर किसी बुरी आत्मा का साया है। जानवर से शादी करने से वह 'बुरा साया' या 'अपशकुन' जानवर पर स्थानांतरित हो जाता है। इसके बाद वह व्यक्ति किसी इंसान से शादी करने के लिए स्वतंत्र और सुरक्षित माना जाता है। हालांकि यह केवल प्रतीकात्मक होता है, लेकिन इसका सामाजिक प्रभाव गहरा है।

4. मन्नत पूरी करने के लिए शरीर को छेदना (थाईपुसम त्योहार)

- तमिलनाडु और दक्षिण भारत के अन्य हिस्सों में 'थाईपुसम' त्योहार के दौरान श्रद्धालु अपने शरीर के विभिन्न अंगों, जैसे गाल, जीभ और पीठ को लोहे की छड़ों या हुक से छेदते हैं। इसे 'कावड़ी अट्टम' का हिस्सा माना जाता है।

- मान्यता : यह भगवान मुरुगन के प्रति समर्पण दिखाने का एक तरीका है। श्रद्धालु मानते हैं कि दर्द सहकर वे अपने पापों का प्रायश्चित कर रहे हैं और भगवान उनकी मन्नतें पूरी करेंगे। आश्चर्य की बात यह है कि इस प्रक्रिया के दौरान बहुत कम रक्त निकलता है, हुक्क, सुई आदि इस तरीके से ऊपर वाली चमड़ी में लगाए जाते हैं, इसमें कम रक्त होता है। यह कोई चमत्कार नहीं है। तर्कशील बी. प्रेमानंद, डा. नरेन्द्र नायक ने अपने पर्दाफाश कार्यक्रमों में इसे करके दिखातें रहे हैं।

महिलाओं के नाक और कान छीद्र के समय भी कम खून निकलता है।

5. नागों की पूजा और कालसर्प दोष (नाग पंचमी)

– भारत में सांपों को मारना पाप माना जाता है और 'नाग पंचमी' पर उनकी विशेष पूजा होती है। लेकिन अंधविश्वास तब गहरा जाता है जब लोग असली कोबरा सांपों को दूध पिलाने की कोशिश करते हैं, जबकि वैज्ञानिक रूप से सांप दूध नहीं पी सकते (दूध उनके फेफड़ों में जाकर उनकी मृत्यु का कारण बन सकता है)।

– मान्यता : कालसर्प दोष से मुक्ति पाने के लिए लोग तांत्रिक अनुष्ठान करते हैं। कई बार जंगलों में जीवित सांपों को पकड़कर उनके दांत तोड़ दिए जाते हैं ताकि वे पूजा के दौरान काट न सकें, जो पशु क्रूरता का एक रूप है।

– अंधविश्वास का मनोविज्ञान : क्यों बनी हुई हैं ये प्रथाएं ?

– इन प्रथाओं के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, फिर भी ये हजारों सालों से जीवित हैं। इसके पीछे कुछ मुख्य मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारण हैं:

– **डर और असुरक्षा :** प्राकृतिक आपदाएं, बीमारियां और आर्थिक तंगी इंसान को डराती हैं। जब कोई तार्किक समाधान नहीं दिखता, तो लोग 'अदृश्य शक्तियों' को खुश करने का सहारा लेते हैं।

– पीढ़ीगत हस्तांतरण : बचपन से ही बच्चों को इन परंपराओं को देखते हुए पाला जाता है। उनके लिए यह 'गलत' नहीं, बल्कि 'संस्कृति' का हिस्सा बन जाता है।

– **शिक्षा का अभाव :** हालांकि शिक्षा बढ़ रही है, लेकिन ग्रामीण भारत के कई हिस्सों में आज भी वैज्ञानिक सोच (Scientific Temper) की कमी है।

– **सामूहिक पहचान :** कई बार लोग किसी प्रथा को सिर्फ इसलिए मानते हैं क्योंकि उनका पूरा समुदाय उसे मान रहा है। समूह से अलग होने का डर उन्हें इन अंधविश्वासों से बांधे रखता है।

– **सामाजिक और कानूनी प्रभाव :** अंधविश्वास केवल ''अजीब'' होने तक सीमित नहीं है, इसके गंभीर परिणाम भी होते हैं। भारत के कुछ राज्यों (जैसे झारखंड और बिहार) में आज भी 'डायन' (Witchcraft) होने के शक में महिलाओं की हत्या कर दी जाती है।

– **चिकित्सा में देरी :** कई लोग बीमारी के समय डॉक्टर के पास जाने के बजाय तांत्रिकों या ओझाओं के पास जाते हैं, जिससे समय पर इलाज न मिलने के कारण मृत्यु हो जाती है।

– **पशु क्रूरता :** बलि प्रथा और जानवरों के साथ किए जाने वाले व्यवहार कई बार अमानवीय होते हैं।

– भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने इन पर अंकुश लगाने के लिए कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में 'महाराष्ट्र मानव बलि और अन्य अमानवीय, अनिष्टकारी और अघोरी प्रथाओं एवं काला जादू रोकथाम और उन्मूलन अधिनियम' लागू है।

– भारत एक ऐसा देश है जो अपने आपको विश्वगुरु कहता है, लेकिन जहाँ बिल्ली के रास्ता काटने पर आज भी कदम ठिठक जाते हैं। यह विरोधाभास ही भारत की जटिलता है। परंपराएं समाज को जोड़ती हैं, लेकिन अंधविश्वास समाज को पीछे धकेलता है।

– समय की मांग है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखते हुए, उन प्रथाओं का त्याग करें जो मानवाधिकारों, पशु अधिकारों और तर्क के खिलाफ हैं। शिक्षा केवल डिग्री प्राप्त करना नहीं है, बल्कि मन को अंधविश्वास की बेड़ियों से मुक्त करना भी है। जब तक समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं होगा, तब तक ये विचित्र प्रथाएं 'आस्था' के नाम पर फलती-फूलती रहेंगी।

पुस्तक की माँ – रामधारनी सिंह 'दिनकर'

पुस्तक की माँ है जिज्ञासा, ज्ञान का प्रथम आधार,
जिससे जागे चेतना, खुलता विज्ञान का हर द्वारा।
अक्षरों में छिपा ब्रह्मांड, सूत्रों में प्रकृति का सार,
माता-सी पोषित करती, देती बुद्धि अपार।
विज्ञान कहे हर सत्य को, तर्कों से करे प्रकाश,
पुस्तक की गोद में पलता, खोजों का इतिहास।
प्रयोगों की भाषा सीखे, कारण-परिणाम का ज्ञान,
हर पृष्ठ पर अंकित रहता, जीवन का विज्ञान।
जिज्ञासा से जन्मे विचार, विचारों से हो विकास,
माता समान पुस्तक सिखाएं, सत्य और विश्वास।
जो इसके संग चलता है, पाता नई पहचान,
ज्ञान की इस जननी से ही, रोश्न होता इंसान।

***

वैज्ञानिक पहेलियाँ

-कुलविंदर कौशल

1. अपना भोजन स्वयं नहीं बनाता,
अन्य पौधों पर जीवन बिताता,
बिना जड़ों के परजीवी पौधा
जिस पौधे पर रहे उसे सुखाता।

2. ऊपर नीला, अंदर पीला मध्य में लाल।
लौ के इन तीनों रंगों में
सबसे गर्म कौन सा ?
बताओ यह सवाल।

3. मेंडेलीव ने किया था
बहुत सोच विचार
तत्वों के वर्गीकरण का
क्या था आधार ?

4. इस पर निर्भर थी
जीवन की कहानी
किन दो तत्वों से
बनता है पानी?

5. यदि बंटी का है साठ किलो भार
पहुंच जाए चंद्रमा पर
पृथ्वी से पार
कितना वजन उसका हो जाएगा
गुरुत्वाकर्षण इस प्रश्न का आधार?

6. यह खट्टे फलों में पाया जाता
जो मसूड़ों को मजबूत बनाता
बताओ कौन सा विटामिन
रोगों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाता?

(बी)

7. एक रसायन ऐसा
जो नीले लिटमस को लाल बनाए
जीभ का स्वाद खट्टा कर जाए
नींबू और सिरके में पाया जाए।

8. जीवन चक्र यह चलाए
मृत शरीर को खत्म कर जाए।
मिलते यह हर जगह
बच्चों, बताओ इसका नाम?

9. बताओ, बच्चो।
आप सोच विचार
दीमाग का होता है
कितना भार ?

10. बताओ सभी
छोटी-बड़ी हड्डियां
कितनी होती है
मानव खोपड़ी में हड्डियां ?

11. प्रत्येक रक्त समूह को चढ़ जाए
सार्वभौमिक प्राप्तकर्ता कहलाए
सार्वभौमिक दाता कहलाए।

12. श्वसन नली के दोनों ओर
यह पाया जाता
थायरोक्सिन स्रावित करे
इस ग्रंथि को क्या कहलाता ?

13. हड्डियों को आपस में
जोड़ कर रखते
बताओ बच्चो अध्यापक
इसका नाम क्या रखते?

14. महिला है वो महान
अपनाया जिस ने विज्ञान
रेडियम की खोज के लिए
किसको मिला नोबेल इनाम ?

15. चुंबक के होतें हैं
कितने पोल
बताओ जरा
दीमाग खोल?

16. गुरुत्वाकर्षण के कारण
सेब जमीन पर आया
बताओ बच्चो
हमें यह किसने समझाया?

17. सूर्य और पृथ्वी के बीच में
जब चंद्रमा आ जाए
तब बताओ बच्चो
कौन-सा ग्रहण कहलाए ?

18. मैं दिखता नहीं,
हर जगह रहता,
सांसों में आता-जाता
हूँ जीवन का आधार,
बताओ बच्चों इनका सार

***

पहेलियों के उत्तर

1-अमरबेल, 2-नीला भाग, 3-परमाणु द्रव्यमान, 4-हाइड्रोजन और ऑक्सीजन, 5-दस किलोग्राम, 6-विटामिन सी, 7-अमल, 8- अपघटक, 9-लगभग 1.3 से 1.5 किलोग्राम, 10-22 हड्डियां, 11-AB प्राप्त करता, O दाता, 12-थायराइड ग्रंथि, 13-लिगामेंट, 14-मैरी क्यूरी, 15-दो (उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव), 16-सर आइजक न्यूटन, 17-सूर्य ग्रहण, 18-ऑक्सीजन।

क्या उल्लू अंधेरे में देख सकते ?

–राजपाल सिंह

आम धारणा यह है कि उल्लू अंधेरे में भी देख सकता है, लेकिन यह सच नहीं है। आप कहेंगे कि अगर उल्लू अंधेरे में नहीं देख सकता, तो और कौन देख सकता है? तो कोई भी नहीं। प्रकाश के बिना देखना संभव ही नहीं है, इसलिए अंधेरे में देखने का तो सवाल ही नहीं उठता। वास्तव में, हमें कहना चाहिए कि उल्लू रात के मंद प्रकाश में भी देख सकता है। रात में, यह मंद प्रकाश चंद्रमा, तारों आदि से पृथ्वी पर पड़ता है, जिसका उपयोग उल्लू या उल्लू जैसे अन्य रात्रिचर प्राणी देखने के लिए करते हैं।



अब अगला सवाल उठता है कि उल्लू इतनी कम रोशनी में कैसे देख पाता है? इसे जानने के लिए, दर्पण में अपनी आँखों को देखें। आँख के रंगीन भाग के बीचोंबीच आपको एक बहुत छोटा काला निशान दिखाई देगा, जिसे आँख की पुतली कहते हैं। यह वास्तव में एक छेद है जिससे प्रकाश आँख में प्रवेश करता है। जब प्रकाश तेज होता है, तो यह पुतली सिकुड़ जाती है और जब प्रकाश कम होता है, तो यह फैल जाती है और थोड़ी बड़ी हो जाती है ताकि अधिक प्रकाश अंदर जा सके। इसी कारण हम कम रोशनी में भी थोड़ा-बहुत देख पाते हैं, लेकिन फिर भी हमारी पुतली का आकार एक निश्चित सीमा से अधिक नहीं हो सकता। तुलनात्मक रूप से, उल्लू की आँखों की पुतलियों का आकार बहुत बड़ा होता है, जिसके कारण उसकी आँख कम रोशनी में भी बहुत अधिक प्रकाश ग्रहण करती है। दूसरा, उल्लू की आँख के रेटिना में छड़ कोशिकाओं की संख्या, जो कम रोशनी के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, हमारी तुलना में कहीं अधिक। इसलिए, उसकी आँखों के इन विशेष गुणों के कारण, वह कम रोशनी में भी अच्छी तरह देख पाता है, जबकि तेज रोशनी उसकी आँखों को आराम नहीं देती। बाकी उल्लुओं ने क्या किताबें पढ़नी पड़ती होती हैं, चूहे ही तो पकड़ने होतें हैं, वे उसे दिखाई दे जातें हैं।

***

उल्लुओं से जुड़े अंधविश्वास

उल्लुओं के बारे में समाज में कई प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित हैं। भारत में प्राय: माना जाता है कि यदि उल्लू घर के पास आकर बोले तो यह किसी अशुभ घटना, जैसे मृत्यु या दुर्भाग्य का संकेत होता है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उल्लू का दिखना बुरी खबर या नुकसान का सूचक है। दूसरी ओर, उल्लू को धन की देवी का वाहन भी माना जाता है, इसलिए कुछ लोग इसे धन और समृद्धि का प्रतीक भी मानते हैं।

इसके अलावा, कई जगहों पर उल्लू को तंत्र-मंत्र और जादू-टोने से जोड़ दिया जाता है, खासकर दीपावली के समय ऐसे अंधविश्वास अधिक सुनने को मिलते हैं। इन मान्यताओं के कारण कई बार उल्लुओं को नुकसान भी पहुँचाया जाता है, जो कि गलत है।

वास्तव में, ये सभी विश्वास वैज्ञानिक दृष्टि से सही नहीं हैं। उल्लू एक रात्रिचर (nocturnal) पक्षी है, जो रात में सक्रिय रहता है और अपनी आवाज़ से संवाद करता है। यह खेतों में चूहों जैसे हानिकारक जीवों को खाकर किसानों की मदद करता है। इसलिए हमें अंधविश्वासों पर विश्वास करने के बजाय वैज्ञानिक सोच अपनानी चाहिए और उल्लुओं की रक्षा करनी चाहिए।

संपादक
'तर्कशील' पंजाबी

महान शहीद करतार सिंह सराभा



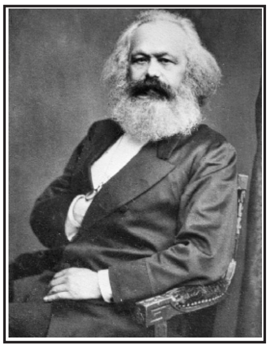
करतार सिंह सराभा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन अमर क्रांतिकारियों में से थे, जिन्होंने बहुत कम उम्र में देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनका जन्म 1896 में पंजाब के लुधियाना जिले के सराभा गाँव में हुआ। बचपन से ही उनमें देशभक्ति की भावना प्रबल थी। उच्च शिक्षा के लिए वे अमेरिका गए, जहाँ उनका संपर्क गदर पार्टी के क्रांतिकारियों से हुआ। यही से उनके जीवन का उद्देश्य स्पष्ट हो गया–भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराना।

गदर पार्टी के माध्यम से उन्होंने विदेशों में रह रहे भारतीयों को संगठित किया और स्वतंत्रता की अलख जगाई। वे 'गदर' अखबार के प्रकाशन में भी सक्रिय रहे, जिसमें अंग्रेजों के खिलाफ क्रांतिकारी विचार प्रकाशित किए जाते थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने भारत में सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई और 1914 में भारत लौट आए।

करतार सिंह सराभा ने पंजाब में क्रांति की तैयारी शुरू की, लेकिन अंग्रेज सरकार को इसकी जानकारी मिल गई। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर लाहौर साजिश केस चलाया गया। मात्र 19 वर्ष की आयु में 1915 में उन्हें फाँसी की सजा दी गई। उनकी बहादुरी और निडरता इतनी अद्भुत थी कि वे हँसते-हँसते फाँसी के फंदे पर चढ़ गए।

सराभा का जीवन युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उन्होंने दिखाया कि सच्ची देशभक्ति उम्र की मोहताज नहीं होती। उनका बलिदान हमें यह सिखाता है कि देश की स्वतंत्रता और सम्मान के लिए हर कठिनाई का सामना करना चाहिए। आज भी उनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है और वे सदैव युवाओं के आदर्श बने रहेंगे।

कार्ल मार्क्स



कार्ल मार्क्स आधुनिक युग के महान दार्शनिक, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री थे, जिन्होंने समाज और इतिहास को समझने के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनके विचारों का आधार तर्क, अनुभव और ऐतिहासिक विश्लेषण पर आधारित था, इसलिए उन्हें ''वैज्ञानिक समाजवाद'' का जनक कहा जाता है।

मार्क्स का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) है। इसके अनुसार समाज का विकास भौतिक परिस्थितियों, विशेषकर उत्पादन के साधनों और आर्थिक संबंधों पर निर्भर करता है। उनका मानना था कि इतिहास का निर्माण विचारों से नहीं, बल्कि आर्थिक शक्तियों और वर्ग संघर्ष से होता है।

उनका दूसरा प्रमुख विचार वर्ग संघर्ष (Class Struggle) है। मार्क्स के अनुसार समाज हमेशा दो मुख्य वर्गों में बँटा होता है–शोषक (पूंजीपति) और शोषित (मजदूर)। औद्योगिक क्रांति के बाद यह संघर्ष और तीव्र हो गया। उन्होंने कहा कि पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों का शोषण होता है, क्योंकि उन्हें उनके श्रम का पूरा मूल्य नहीं मिलता।

मार्क्स ने अधिशेष मूल्य (Surplus Value) का सिद्धांत भी दिया, जिसके अनुसार पूंजीपति मजदूरों के श्रम से अतिरिक्त लाभ कमाते हैं। यही शोषण की जड़ है। इस विश्लेषण के माध्यम से उन्होंने पूंजीवाद की वैज्ञानिक आलोचना की।

उनका मानना था कि अंतत: मजदूर वर्ग संगठित होकर क्रांति करेगा और एक वर्गविहीन समाज (Communist Society) की स्थापना होगी, जहाँ सभी को समान अवसर और संसाधन मिलेंगे।

इस प्रकार, कार्ल मार्क्स के विचार समाज को समझने और बदलने का वैज्ञानिक तरीका प्रदान करते हैं। उनके सिद्धांत आज भी समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

इंकलाब से मिले तो हमें जीतना आ गया

मुनेश त्यागी

बचपन में चला करते थे घुटनों के बल
मां बाप के हाथ मिले तो चलना आ गया।

मुश्किलों के खिलाफ लड़े तो थे बहुत
हारते हारते हमें उभरना आ गया।

हकों के लिए मिलकर लड़े थे बहुत
लड़ते लड़ते ही हमें जूझना आ गया।

मेहनतकशों से जब मिलकर चलने लगे
मुट्ठी भींच कर आवाज उठाना आ गया।

अकेले-अकेले तो मजबूर थे चुप रहने को
एकजुट हुए तो हमें बोलना आ गया।

जमाने की लूट ने हमें रौंदा था तो बहुत
अपनों का मिला साथ तो भिडना आ गया।

जुल्म ओ सितम ने हमें कहां उभरने दिया
मिला आपका साथ तो मुस्कुराना आ गया।

उनकी कोशिश की हिंदू मुसलमान खूब लड़ें
मगर हमें तो और भी साथ निभाना आ गया।

इंकलाब के बारे में सुना था तो बहुत
इंकलाब से मिले तो हमें जीतना आ गया।

***

यदि आपका बच्चा समय पर नहीं उठता या स्कूल जाने से कतराता है : तो आप के बच्चे को दिन भर कुछ भी अच्छा होने की उम्मीद नहीं है। वह चिंताओं, तरह-तरह के झगड़ों, चिल्लाहट और उस पर थोपे गए जबरन कर्तव्यों के बोझ से थक चुका है। उसे स्कूल में भी कुछ अच्छा होने की उम्मीद नहीं है।



अपने बच्चे के प्रति सहानुभूति रखें। उसे पीड़ादायक भावनाओं के उस दलदल से बाहर निकलने में सहायता करें।

याद रखें कि उसका जिद्दीपन और बेचैनी आपकी उपेक्षा का परिणाम है। यदि आप उस पर ध्यान नहीं देंगे, तो उसका व्यक्तित्व निश्चित रूप से बिगड़ जाएगा। कितनी भी सख्ती बरती जाए, उससे बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो सकता। हर बार डांटने से मामला और बिगड़ जाएगा। उसमें नई चीजें सीखने की इच्छा नहीं रहेगी।

बच्चे पर शिक्षा का दबाव न डालें, बल्कि उसे वह दिशा दिखाएं जिसमें उसे आनंद मिले। इस तरह आपको उसकी प्रतिभा को पहचानने की अधिक संभावना होगी।

गुरु की बिल्ली

एंथोनी डी मेलो

जब गुरुजी हर शाम पूजा करने बैठते थे, तो आश्रम की बिल्ली बीच में आकर उपासकों का ध्यान भटका देती थी। इसलिए उन्होंने आदेश दिया कि शाम की प्रार्थना के दौरान बिल्ली को एक खंभे से बांध दिया जाए। बहुत समय बाद, जब गुरुजी का देहांत हो गया, तब भी शाम की पूजा के दौरान बिल्ली को खंभे से बांधा जाता रहा। और जब बिल्ली की भी मृत्यु हो गई, तो आश्रम में एक और बिल्ली लाई गई और उसे भी शाम की पूजा के दौरान खंभे से बांध दिया गया। सदियों बाद, गुरुजी के शिष्यों ने पूजा के दौरान बिल्ली को खंभे से बांधने के आध्यात्मिक महत्व पर विद्वतापूर्ण ग्रंथ लिखे गए।

जैविक विकास, डायनासोर, मनुष्य, धर्म और समय की लंबी यात्रा

–धर्मेन्द्र आज़ाद

विज्ञान ठोस प्रमाणों के आधार पर यह स्थापित कर चुका है कि पृथ्वी का जन्म लगभग 4.5 अरब वर्ष पहले एक खगोलीय परिघटना के परिणामस्वरूप हुआ। इसके बाद बेहद लंबे समय तक इस ग्रह पर केवल भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाएँ ही सक्रिय रहीं।

करोड़ों वर्षों तक चली इन भौतिक–रासायनिक प्रक्रियाओं के बाद एक नई और जटिल प्रक्रिया जुड़ी–जैविक प्रक्रिया। यहीं से अत्यंत सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व सामने आया। विज्ञान साबित कर चुका है कि जीवन किसी चमत्कार की तरह अचानक प्रकट नहीं हुआ, बल्कि करोड़ों वर्षों के धीमे, जटिल और संघर्षपूर्ण विकास के बाद उसके शुरुआती रूप उभरे।

इसी लंबी प्रक्रिया के दौरान, लगभग 23 करोड़ वर्ष पहले, अब तक के सबसे विशाल और शक्तिशाली जीव–डायनासोर–पृथ्वी पर अस्तित्व में आए। उन्होंने इस धरती पर करीब 16 करोड़ वर्ष तक प्रभुत्व बनाए रखा। वे न तो कमजोर थे, न असफल और न ही किसी ''डिज़ाइन की गलती'' थे। फिर भी वे पूरी तरह विलुप्त हो गए। पृथ्वी का इतिहास स्पष्ट करता है कि विलुप्ति कोई अपवाद नहीं, बल्कि प्रकृति की सामान्य और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

जीवाश्म विज्ञान यह भी बताता है कि पृथ्वी पर अब तक उत्पन्न हुई 99 प्रतिशत से अधिक प्रजातियाँ पूरी तरह समाप्त हो चुकी हैं। डायनासोर गए, उनसे पहले और बाद की अनगिनत जीव–जातियाँ भी समय की परतों में दफन हो गईं।

अब ज़रा मनुष्य की ओर देखें। हमारी प्रजाति होमो सेपियन्स का उद्भव लगभग 2 लाख वर्ष पहले हुआ। पृथ्वी के इतिहास की घड़ी पर यह समय एक क्षण से भी छोटा है। मानव जाति के सामूहिक जीवन के ठोस प्रमाण 15 हज़ार वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं, और खेती, नगर, लेखन तथा राज्य जैसी संरचनाओं वाली सभ्यता तो केवल 10 हज़ार वर्ष पुरानी है।

और धर्म? यह तो और भी नई परिघटना है। संगठित धर्मों का उद्भव लगभग 4 से 6 हज़ार वर्ष पहले हुआ। यानी 4.5 अरब वर्ष के इतिहास में धर्म एक अत्यंत हालिया सामाजिक घटना है। पूरी समय–रेखा को एक साथ देखें तो तस्वीर साफ़ हो जाती है–डायनासोर करोड़ों वर्षों तक रहे, मनुष्य लाखों वर्षों से मौजूद है, सभ्यता हज़ारों वर्षों पुरानी है और धर्म उससे भी नया।

यहीं से कुछ असहज लेकिन ज़रूरी सवाल जन्म लेते हैं। यदि ईश्वर सदा से मौजूद था, तो डायनासोरों और उन करोड़ों प्रजातियों को विलुप्त होने से क्यों नहीं बचाया गया? क्या वे उसकी रचना नहीं थीं? और यदि उद्देश्य विशेष रूप से मनुष्यों को पैदा करना था, तो मनुष्य को पृथ्वी पर लाने में 4.5 अरब वर्ष क्यों लगे? उसके बाद भी उसे ''सभ्य'' बनने में लगभग 1 लाख 90 हज़ार वर्ष क्यों लग गए?

यदि कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर होता, तो शुरुआत से ही सीधे सभ्य मनुष्य को धर्मग्रंथों के साथ धरती पर उतारा जा सकता था–वह भी एक ही सार्वभौमिक धर्म और एक ही ग्रंथ के साथ। फिर अनेक धर्मों, उनके भीतर असंख्य पंथों और सबकी ''अपनी–अपनी ढपली, अपना–अपना राग'' क्यों रचा गया, यदि ईश्वर एक ही है?

एक और अहम प्रश्न–धर्मों के आने से पहले के मनुष्य क्या असामाजिक और अनैतिक थे? विज्ञान का उत्तर स्पष्ट है–नहीं। सहयोग, करुणा और सामाजिक व्यवहार धर्म से बहुत पहले विकसित हो चुके थे। न केवल मनुष्यों में, बल्कि कई अन्य प्रजातियों में भी। यदि किसी जीव की माँ अपने बच्चों की देखभाल न करे, या कोई झुंड आपसी सहयोग न बनाए, तो वह प्रजाति टिक ही नहीं सकती। शिकारी जीव भी शिकार के लिए झुण्ड में रहकर सामूहिक रणनीति अपनाते हैं। यानी करुणा, सहयोग और सामाजिकता किसी धर्म ग्रंथ की देन नहीं, बल्कि जीवन के अस्तित्व की बुनियादी शर्तें हैं।

आज स्थिति यह है कि मनुष्य खुद ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर रहा है जो उसके ही अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा बनती जा रही हैं–जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण का विनाश, परमाणु युद्धों का जोखिम और तेज़ी से घटती जैव विविधता। इसके बावजूद अक्सर यह कहकर पल्ला झाड़ लिया जाता है कि ''सब कुछ ईश्वर की इच्छा है।'' लेकिन यदि भविष्य में इन्हीं कारणों से मनुष्य ही नष्ट हो गया, तो ईश्वर किसके लिए बचेगा? क्या तब किसी नई प्रजाति के लिए कोई नया धर्म गढ़ा जाएगा?

यहीं विज्ञान और आस्था के बीच का फर्क साफ़ दिखाई देता है। आस्था अक्सर सवालों पर विराम लगा देती है, जबकि विज्ञान सवालों से ही आगे बढ़ता है। आज ज़रूरत डर और पाखंड फैलाने वाली कथाओं की नहीं, बल्कि तर्क, प्रमाण और वैज्ञानिक चेतना की है। शिक्षा का उद्देश्य आज्ञाकारी दिमाग़ तैयार करना नहीं, बल्कि ऐसे नागरिक विकसित करना होना चाहिए जो सत्ता, व्यवस्था और परंपरा–तीनों से सवाल पूछ सकें; जो विनाशकारी शक्तियों को पहचान सकें और उनके ख़िलाफ़ खड़े हो सकें।

मनुष्य का भविष्य किसी अलौकिक शक्ति के भरोसे से सुरक्षित नहीं होगा। वह सुरक्षित होगा विवेक, सामूहिक ज़िम्मेदारी और सह–अस्तित्व से। प्रकृति और अन्य जीवन–रूपों के साथ संतुलन बनाकर ही मानव जाति इस ग्रह पर टिक सकती है।

विज्ञान हमें किसी अलौकिक शक्ति से डरने, अपनी किस्मत उससे लिखवाने या उसे खुश करने के लिए तरह–तरह के पाखंड करने को नहीं कहता। वह हमें समय की वास्तविकता से परिचित कराता है। और समय–किसी भी प्रजाति का सबसे निष्पक्ष, निर्मम और ईमानदार गवाह है।

काकोरी शहीदों को उनके शहर में फिर मृत्युदंड!!

–सुधीर विद्यार्थी

9 अगस्त, 1925 को हुए ऐतिहासिक काकोरी ट्रेन एक्शन में शाहजहांपुर के विख्यात क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खां और ठाकुर रोशन सिंह को 19 दिसम्बर, 1927 को उत्तर प्रदेश को विभिन्न जेलों में फांसी पर चढ़ाया गया, उन्हें सूबे की वर्तमान सरकार ने फिर से उनके अपने ही शहर में 'मृत्यु दंड' की सजा दे दी। 23 मार्च, जबकि यह भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की शहादत का दिन था, उस रोज प्रात: 3 बजे सत्ता का बुल्डोजर गरजा और कुछ ही पल में शहीदों की प्रतिमाओं को बेशर्मी से मलवे में तब्दील ही नहीं किया गया, अपितु देश की स्वतंत्रता के बलिदानियों के इस अर्धशती पूर्व निर्मित ऐतिहासिक स्मारक के ध्वस्त किए गए अवशेषों को शहर से बाहर डंपिंग ग्राउंड से फेंक दिया गया।

काकोरी शहीदों की यह तीनों भव्य प्रतिमाएं 'स्वतंत्रता के रजत जयंती वर्ष' (1972) तत्कालीन नगरपालिका अध्यक्ष श्री वासुदेव गुप्ता ने स्थापित कराई थीं, जो 42 के आंदोलन में जेल भी गए थे। उसी समय इस शहीद प्रतिमाओं के दक्षिण की ओर के मैदान में 'शहीद द्वार' का निर्माण कराकर स्वतंत्रता सेनानी और 'साथी' साप्ताहिक के सम्पादक श्री श्याम सिंह 'बागी' ने 'शहीद मेला' का आयोजन किया, जिसका उदघाटन पेशावर क्रांति के नायक चंद्रसिंह गढ़वाली ने किया था।

टाउन हॉल कहे जाने वाले शहर के इस केंद्रीय स्थान के निकट गांधी भवन सभागार, दो मिनट के फासले पर आर्य समाज का 'बिस्मिल कक्ष' (जहां वे रहते थे) और थोड़ी दूर आगे बिस्मिल के जन्म का मोहल्ला खिरनी बाग। न जाने कितने पुराने क्रांतिकारी, देश भर के साहित्यकार, चिंतक और रंगकर्मी काकोरी शहीदों के इन प्रतिमाओं पर आकर श्रद्धावान होते रहे, उस स्थल को शहर में सौन्दर्यकरण के नाम पर 23 मार्च की भोर होते तक पूरी तरह सपाट जगह में बदल दिया गया।

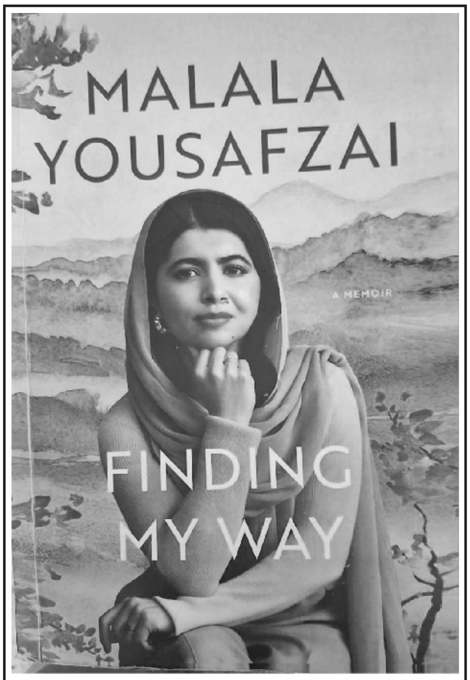
मलबे में पड़ा हुआ अशफ़ाक का 'कटा हुआ सिर', रोशन सिंह का ज़मींदोज़ पड़ा 'धड़' और बिस्मिल ने नाम का क्षतिग्रस्त 'इंकलाब' हमें सन्नाटे में भर गया। ओ मेरे शहर के बदनसीब शहीदों (?) तुम्हारी बस्ती में तुम्हें फिर से मृत्यु–दंड की सजा दे दी गई और इस बार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ तनी रही तुम्हारी मजबूत गर्दनों पर मौजूदा स्वतंत्र भारत की सरकार के जल्लादी बुल्डोजर का शिकंजा था।

शहीदों हम शर्मिंदा हैं!

अपना रास्ता तलाशते हुए

मलाला यूसुफ़ज़ई का जन्म 12 जुलाई 1997 को पाकिस्तान की स्वात घाटी के मिंगोरा गाँव में हुआ। तालिबान द्वारा लड़कियों के स्कूल जाने पर पाबंदी लगाए जाने के कारण स्वात घाटी में डर का माहौल था। जब वह अपनी सहेलियों के साथ स्कूल से वापस आ रही थी, तो 9 अक्टूबर 2012 को तालिबानी आतंकियों ने उसके सिर में गोली मार दी। पेशावर के अस्पताल में शुरुआती ऑपरेशन के बाद उसे इंग्लैंड ले जाया गया, जहाँ उसके दिमाग के कई ऑपरेशन हुए। इंग्लैंड से स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद उसने दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र विषयों के साथ ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से 2020 में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। 2013 में उसकी पहली किताब "I Am Malala" प्रकाशित हुई थी और 2025 में उसकी दूसरी किताब "Finding My Way" प्रकाशित हुई। प्रस्तुत हैं दूसरी किताब से कुछ अंश:)

''जब मुझे गोली मारी गई, तब एक हफ्ता भी पूरा नहीं हुआ था कि पाकिस्तान में कुछ लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि यह हमला एक नाटक था, एक साजिश थी। मुझे लगा कि ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों पर कौन विश्वास करेगा। लेकिन फिर हजारों लोग, यहाँ तक कि कुछ राजनेता और पत्रकार भी, यह कहने लगे कि मेरे परिवार ने पैसे और ब्रिटिश पासपोर्ट पाने के लिए यह नकली हमला करवाया है। जबकि तालिबान ने खुद बयान जारी कर इस हमले की जिम्मेदारी ली थी। पाकिस्तान और यूके के डॉक्टरों ने भी टीवी पर इंटरव्यू दिए थे। लेकिन इन सब सबूतों के बावजूद लोगों के विश्वास में कोई फर्क नहीं पड़ा।



जब मेरी माँ ने यह झूठी बातें सुनीं, तो वह रो पड़तीं और कहतीं– 'काश यह सब सच होता, काश यह कभी हुआ ही न होता।'

मेरे साथ जो हुआ था, उसे साजिश बताना मेरे ऊपर एक और हमले जैसा था–ऐसा घाव जो कभी ठीक नहीं हो सकता। अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद एक पत्रकार ने मुझसे पूछा कि जिसने मुझे गोली मारी, मैं उससे क्या कहना चाहूँगी। मैंने कहा कि मैं उसे माफ करती हूँ–और यह सच था। लेकिन उसी रात, अपनी डायरी में मैंने लिखा– अगर मैं उससे कुछ कहूँ, तो यही कहूँगी कि अगली बार मेरे माथे के बीच में निशाना लगाना, ताकि कोई यह न कह सके कि यह एक नाटक था।

कुछ लोग इसे साजिश मानते थे, जबकि कुछ लोग यह मानते थे कि हमला सच था, लेकिन उन्हें मुझे मिल रही सहानुभूति और इलाज से नफरत थी। वे सोशल मीडिया पर बार-बार पूछते थे कि जब पश्चिमी देशों ने हमारे देश पर कब्जा किया, हमारे लोगों को युद्धों में झोंका, ड्रोन हमलों में बच्चों और नागरिकों को मारा–तो अब वे एक लड़की के जरिए प्रशंसा क्यों बटोरना चाहते हैं। पश्चिम का मेरे प्रति प्यार ही मेरे अपने देश के लोगों में मेरे प्रति नफरत पैदा करने के लिए काफी था।

मुझे ऐसा लगता था जैसे मैं अपनी जिंदगी एक मुकदमे की तरह जी रही हूँ, जहाँ मुझे उन लोगों के सामने अपनी बेगुनाही साबित करनी पड़ रही है, जिन्होंने पहले ही मुझे दोषी मान लिया है।

मेरी रक्षा का तरीका यह था कि मैं अपने बारे में आने वाली नफरत भरी टिप्पणियों को अनदेखा करूँ। लेकिन जब लोग कहते कि मैंने पाकिस्तान की लड़कियों के लिए कुछ नहीं किया, तो यह बहुत दुख देता था। यह सच से बहुत दूर था।

हालाँकि लोग कहते रहे कि मैंने कुछ नहीं किया, लेकिन मैं पाकिस्तान में अपने सबसे बड़े प्रोजेक्ट के बारे में चुप रही। जब मुझे 17 साल की उम्र में नोबेल पुरस्कार मिला, तो मैंने उसकी राशि शंगला घाटी के दूर-दराज के गाँवों में जमीन खरीदने में लगाई। वहीं मैंने एक स्कूल बनाने का फैसला किया, क्योंकि पूरे क्षेत्र में लड़कियों के लिए एक भी हाई स्कूल नहीं था।

इन गाँवों की 83 फीसदी महिलाएँ अनपढ़ थीं। बहुत से माता-पिता अपनी बेटियों को दूसरी कक्षा के बाद ही स्कूल से हटा लेते थे, ताकि वे घर के काम कर सकें।

और एक और दिन–

जब मैं जागी, तो मेरा फोन ट्विटर और व्हाट्सऐप संदेशों से भरा हुआ था। किसी ने मेरी तस्वीर खींचकर सोशल मीडिया पर डाल दी थी। जब मैं रोइंग प्रैक्टिस के बाद हास्टल वापिस जा रही थी। आगे यह तस्वीर पाकिस्तान तथा अन्य देशों के खासकर उर्दू टीवी न्यूज़ चैनल तक पहुंच गई। उसमें मैं जींस, टी-शर्ट और जैकेट पहने हुए थी। मैने सर पर स्कार्फ बांधा हुआ था जिस पर सुबह की हलकी रोशनी पड़ रही थी।

सैकड़ों लोगों–ज्यादातर पाकिस्तानी पुरुषों–को इस बात से झटका लगा कि मैंने सलवार-कमीज की जगह जींस पहनी थी। कुछ ने मुझे गद्दार कहा, कुछ ने कहा कि मैंने अपने धर्म और संस्कृति को छोड़ दिया है।

मेरी माँ ने फोन पर गुस्से में पूछा– ''तुमने ऐसे कपड़े क्यों पहने?'' रिश्तेदार फोन कर रहे थे। मेरी माँ का गुस्सा मुझे हमेशा हिला कर रख देता था। लेकिन अब मैंने ठान लिया था कि अगर अब झुक गई तो कालेज के तीन साल तक मुझे यही सहन करना पड़ेगा।

मैंने कहा– ''मैं रोइंग क्लब जा रही थी, कोई धार्मिक यात्रा नहीं। मैं यहाँ किसी देश के कल्चर की नुमाइंदा नहीं हूँ,मैं सिर्फ एक छात्रा हूँ और सामान्य जीवन जीना चाहती हूँ।''

कपड़े मेरे लिए आज़ादी और पहचान का प्रतीक थे। अगर मैं हर समय डरती रहूँ, तो सामान्य जीवन नहीं जी सकती।मैंने फोन काट दिया, मैं अपने आप में सही होते हुए भी निराश महसूस कर रही थी।हर बार जब मैं भाषण देती और दुनिया भर की उन लाखों लड़कियों के बारे में बात करती जो स्कूल नहीं जातीं, तो मेरे मन में वही चेहरे आ जाते थे: मेरी कज़न, जो एक दिन घर आई और पता चला कि वह अब कभी स्कूल नहीं जा सकेगी क्योंकि उसके पिता ने उसकी शादी कर दी थी। एक सहेली, जिसके पंद्रह साल की उम्र में ही दो बच्चे हो गए थे। मिंगोरा में मैंने हर जगह बच्चों को मजदूरी करते देखा–लड़कियां जो घर साफ करतीं, सड़क के किनारे संतरे बेचतीं या कूड़े में से लोहा चुनतीं।

इन लड़कियों की मदद करने के लिए, मैंने काफी समय तक सारे नियमों का पालन करने की कोशिश की–वे कपड़े पहने जो मेरी माँ चुनती थीं, और वही आज्ञाकारी बेटी बनी रही जो पाकिस्तानी माता-पिता चाहते हैं। लेकिन यह संतुलन बनाए रखना अब एक जाल जैसा लगने लगा था। मैं भले ही सारा दिन मंच पर खड़े होकर पुरुषों के ज़ुल्मों की निंदा करती थी, लेकिन मेरी इन बातों ने मीडिया का उतना ध्यान नहीं खींचा था जितना अब मेरी जींस पहनने को लेकर हो रहा था। तो फिर मैं अपने आलोचकों को खुश करने की कोशिश क्यों करूँ ?

कुछ लोग मेरे स्कार्फ की भी आलोचना कर रहे थे–कुछ कहते थे यह दबाव का प्रतीक है, जबकि कुछ कहते थे कि मुझे इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन मैंने तय किया कि मैं न तो परंपरावादियों को और न ही धर्म विरोधियों को अपने फैसलों का हिसाब दूँगी।

मेरा दुपट्टा मुझे अपने घर की याद दिलाता था। मैं पाकिस्तान की लड़कियों को यह दिखाना चाहती थी कि सिर पर दुपट्टा रखकर भी कोई लड़की स्वतंत्र जीवन जी सकती है।

आखिरकार मुझे अपने बनाए हुए स्कूल का दौरा करने का मौका मिला। वहाँ 700 छात्राएँ और 40 शिक्षक थे। यह एक सुंदर तीन मंजिला परिसर था। हर तरफ लड़कियाँ पढ़ाई कर रही थीं, खेल रही थीं और अपने भविष्य के सपने देख रही थीं।

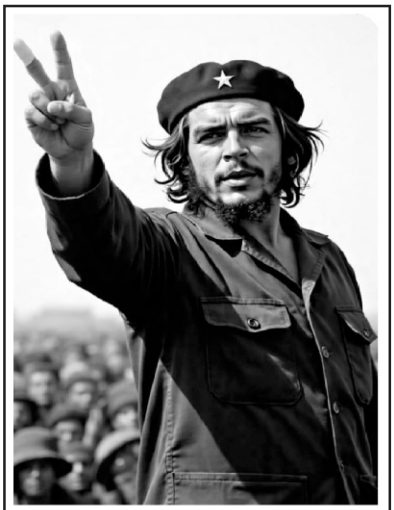
जब मैंने शुरुआत की थी, तो लोगों ने कहा था कि यहाँ के माता-पिता अपनी बेटियों को नहीं पढ़ाएँगे। लेकिन अब हालत यह थी कि सीटों से ज्यादा आवेदन आ रहे थे।

हमने ''पायनियर बैच'' की लड़कियों से मुलाकात की–वे 25 छात्राएँ जो पहली बार ग्रेजुएट होने वाली थीं। हम सब लॉन में बैठ गए और मैंने उनके उत्साह से भरे चेहरों को देखा।

अनुवादक : जसवंत मोहाली

क्रांतिकारी एरनेस्टो चे गवेरा

एरनेस्टो चे गुएवारा जिन्हें दुनिया भर में 'चे गुएवारा' के नाम से जाना जाता है, 20वीं सदी के सबसे प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेताओं में से एक थे। उनका जन्म 14 जून 1928 को अर्जेंटीना के रोसारियो शहर में हुआ था। बचपन से ही चे को अस्थमा की बीमारी थी, लेकिन उन्होंने इसे अपनी कमजोरी नहीं बनने दिया। वे पढ़ाई में तेज और जिज्ञासु स्वभाव के थे। उन्होंने ब्यूनस आयर्स विश्वविद्यालय से चिकित्सा (मेडिसिन) की पढ़ाई की और डॉक्टर बने।



अपने छात्र जीवन के दौरान चे गुएवारा ने दक्षिण अमेरिका की लंबी यात्रा की, जिसने उनके जीवन की दिशा बदल दी। इस यात्रा में उन्होंने गरीबी, असमानता और शोषण को करीब से देखा। खासकर चिली, पेरू और कोलंबिया जैसे देशों में मजदूरों और किसानों की दयनीय स्थिति ने उन्हें गहराई से प्रभावित किया। यहीं से उनके मन में सामाजिक न्याय और क्रांति के विचार पनपने लगे।

1955 में मेक्सिको में उनकी मुलाकात फिडल कास्ट्रो से हुई। कास्त्रो क्यूबा में तानाशाह फुलजेसीओ बेटिस्टा के खिलाफ क्रांति की तैयारी कर रहे थे। चे गुएवारा उनके आंदोलन से जुड़ गए और जल्द ही एक प्रमुख क्रांतिकारी नेता बन गए। 1956 में वे कास्त्रो के साथ ''ग्रान्मा'' नाव से क्यूबा पहुंचे और गुरिल्ला युद्ध की शुरुआत की।

क्यूबा की क्रांति (1956-1959) में चे गुएवारा की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण रही। उन्होंने न केवल युद्ध में हिस्सा लिया, बल्कि रणनीति बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1959 में कास्त्रो की जीत के बाद क्यूबा में नई सरकार बनी और चे गुएवारा को कई महत्वपूर्ण पद दिए गए। वे क्यूबा के राष्ट्रीय बैंक के अध्यक्ष और उद्योग मंत्री भी बने। उन्होंने देश की अर्थव्यवस्था को समाजवादी दिशा में ले जाने का प्रयास किया।

चे गुएवारा केवल क्यूबा तक सीमित नहीं रहे। वे दुनिया के अन्य देशों में भी क्रांति फैलाना चाहते थे। 1965 में उन्होंने क्यूबा छोड़ दिया और अफ्रीका के कांगो में क्रांतिकारी आंदोलन में हिस्सा लिया, लेकिन वहां उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद वे 1966 में बोलीविया पहुंचे, जहां उन्होंने सरकार के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध शुरू किया।

हालांकि, बोलीविया में उनका अभियान सफल नहीं हो सका। 8 अक्टूबर 1967 को बोलीवियाई सेना ने उन्हें पकड़ लिया और अगले दिन, 9 अक्टूबर 1967 को उन्हें गोली मारकर हत्या कर दी गई। उनकी मृत्यु ने उन्हें एक अमर क्रांतिकारी प्रतीक बना दिया।

चे गुएवारा के विचार मुख्यतः मार्क्सवाद और समाजवाद से प्रेरित थे। वे पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और सामाजिक असमानता के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि समाज में समानता और न्याय स्थापित करने के लिए क्रांति आवश्यक है। उन्होंने ''गुरिल्ला युद्ध'' की रणनीति को लोकप्रिय बनाया और इसे एक प्रभावी क्रांतिकारी तरीका बताया।

आज चे गुएवारा की छवि केवल एक नेता के रूप में नहीं, बल्कि एक विचार और प्रतीक के रूप में जानी जाती है। उनकी तस्वीर-लंबे बाल, दाढ़ी और बेरेट (टोपी) में-पूरी दुनिया में विद्रोह और स्वतंत्रता का प्रतीक बन चुकी है। युवाओं के बीच वे आज भी प्रेरणा का स्रोत हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो अन्याय और शोषण के खिलाफ लड़ना चाहते हैं।

चे गुएवारा का जीवन संघर्ष, साहस और विचारधारा का अनूठा उदाहरण है। उन्होंने अपने सिद्धांतों के लिए जीवन भर संघर्ष किया और अंत में उसी मार्ग पर चलते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। उनका जीवन हमें यह सिखाता है कि यदि व्यक्ति में दृढ़ इच्छाशक्ति और समाज के प्रति समर्पण हो, तो वह दुनिया में बदलाव ला सकता है।

जसिंता केरकेट्टा की कविताएं



जसिंता केरकेट्टा

जसिंटा केरकेट्टा, समकालीन हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण आदिवासी कवयित्री और पत्रकार हैं। उनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन, संघर्ष, प्रकृति और सामाजिक अन्याय की गहरी झलक मिलती है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से हाशिए पर खड़े समुदायों की आवाज को सामने लाती हैं।

जसिंता केरकेट्टा की भाषा सरल, संवेदनशील और प्रभावशाली है, जो पाठकों के मन को झकझोर देती है। उनकी कविताएँ केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक सामाजिक हस्तक्षेप भी हैं। वे जल, जंगल और जमीन के मुद्दों को प्रमुखता से उठाती हैं और आदिवासी पहचान को सशक्त बनाती हैं।

उनका लेखन शोषण, विस्थापन और असमानता के खिलाफ एक सशक्त प्रतिरोध है। वे समाज को यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि विकास के नाम पर किसका नुकसान हो रहा है। इस प्रकार, उनका साहित्य समाज में जागरूकता और परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

राष्ट्रवाद

जब मेरा पड़ोसी
मेरे खून का प्यासा हो गया
मैं समझ गया
राष्ट्रवाद आ गया।

ईश्वर

बंदूकों पर
सारा दोष न मढ़ा जाए
इसीलिए
कुछ लोगों ने तय किया
चलो कोई ईश्वर गढ़ा जाए।

मैं क्यों मारा जाता हूं

मैं जब
किसी के प्रेम में होता हूं
उसकी जाति,
धर्म, नस्ल भूल जाता हूं
बस इसी बात पर
हर बार मारा जाता हूं।

गांव

जब शहर में विपत्ति आई
बहुत से लोग
अपने गांव लौट रहे थे
पर वे धरती पर किधर लौटेंगे
अपने गांव की हत्या हो जाने के बाद
जो शहर की तरफ़ भागे थे ?

नशा

हम महुआ के नशे में थे
और वे धर्म के
हम नशे में नाचने लगे
और वे हत्या करने लगे।

महात्मा

मेमने मासूम बने रहे
भले और प्यारे भी
अहिंसक और प्रेम से भरे हुए
तब भी महात्मा न हो सके
भेड़ियों ने कहा
हिंसक होना तो हमारा स्वभाव है
पर हां
हममें से कोई
प्रेम और अहिंसा की बात करेगा
वह महात्मा होगा
और अक्सर
महात्मा उन्हीं के बीच से आया।

इंसानों की सवारी करते लोग

इस देश में बहुत से देवी-देवता
फूल पर, हंस पर
हाथी पर, चूहे पर
भैंस पर, शेर पर सवार हैं
और उनको पूजने वाले लोग
कुछ इंसानों को
इंसान न मानते हुए
उन पर सवार हैं ।

लौटना

कुछ लौटे सीखने के लिए
पर कुछ लौटे
नए तरीक़े से
हमें लूटने के लिए।

सपने

एक ऐसी दुनिया के सपने
देखती हूं
जहां किसी तरह की
सीमा न हो
पर हर आदमी जाने
कि उसकी सीमा क्या है ?

***

कितनी कारगर होगी जीवनशैली आधारित जलवायु नीतियां ? क्या लोगों को स्वीकार होगा जीवनशैली में बदलाव का दबाव ?

जीवनशैली आधारित जलवायु नीतियां जरूरी हैं, लेकिन जब लोग मजबूर महसूस करते हैं, तब वे इनका विरोध कर सकते हैं। आज के समय में जलवायु परिवर्तन दुनिया के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक बन गया है। हर देश और सरकार कोशिश कर रही है कि लोगों की जीवनशैली में बदलाव लाया जाए ताकि कार्बन उत्सर्जन कम किया जा सके। इसमें मांस का सेवन कम करना, शहरों में कार पर प्रतिबंध लगाना और हवाई यात्रा घटाना जैसी नीतियां शामिल हैं। लेकिन हाल ही में प्रकाशित एक अध्ययन ने यह दिखाया है कि ऐसी नीतियां हमेशा सकारात्मक असर नहीं डालती।

नेचर स्टेबिलिटी में प्रकाशित शोध में पाया गया कि जीवनशैली पर आधारित नीतियां कभी-कभी लोगों के समर्थन को कमजोर कर सकती हैं। यह तब होता है जब लोग महसूस करते हैं कि उन्हें मजबूर किया जा रहा है। शोध में कहा गया है कि केवल व्यवहार बदलने से काम नहीं बनता। यदि लोग मजबूरी महसूस करें तो उनके मूल ''पर्यावरणीय'' मूल्य भी प्रभावित हो सकते हैं।

डेनमार्क के टेक्निकल यूनिवर्सिटी के व्यवहार अर्थशास्त्री के नेतृत्व में यह अध्ययन किया गया। इसमें 3,000 से अधिक जर्मनी के लोगों से सर्वेक्षण किया गया। प्रतिभागियों से पूछा गया कि वे विभिन्न जलवायु नीतियों और कोविड-19 प्रतिबंधों के बारे में क्या सोचते हैं। शोध से पता चला कि जीवनशैली पर आधारित नियम, जैसे कि शहरों में कार प्रतिबंध, लोगों में कड़ा विरोध पैदा कर सकते हैं। कभी-कभी लोग इन नीतियों के प्रति कोविड-19 नियमों की तुलना में अधिक नकारात्मक प्रतिक्रिया दिखाते हैं। इसे शोध में भीड़-प्रभाव कहा गया है। इसका मतलब है कि जब लोग नियंत्रित होने का विरोध करते हैं, तो वे पहले से मौजूद पर्यावरणीय प्रेरणा को कम कर सकते हैं, जैसे कि साइकिल चलाना, सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल करना या घर में ऊर्जा की बचत करना।

क्यों जीवन शैली बदलाव जरूरी है

जीवनशैली में बदलाव पर चर्चा इसलिए होती है क्योंकि रोजमर्रा की आदतें सीधे तौर पर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को बढ़ाती हैं।

मांस और डेयरी उत्पादन¬ जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) के अनुसार, मांस और डेयरी उत्पादन वैश्विक उत्सर्जन का लगभग 14-15 फीसदी जिम्मेदार है। इसका मुख्य कारण गायों से निकलने वाला मीथेन गैस और पशु आहार के लिए जमीन का उपयोग है।

परिवहन¬ यह वैश्विक ऊर्जा-संबंधित सीओ2 उत्सर्जन का लगभग एक चौथाई हिस्सा पैदा करता है। इसमें निजी कारें सबसे बड़ी भूमिका निभाती हैं, जबकि हवाई यात्रा का हिस्सा कम लोगों तक सीमित है। हालांकि, आईपीसीसी के अनुसार यदि जीवनशैली में बदलाव किए जाएं, तो 2050 तक वैश्विक उत्सर्जन में लगभग 70 फीसदी तक की कमी की जा सकती है।

नीतियां कैसे बेहतर बनाई जा सकती हैं

शोध में यह भी बताया गया कि लोगों का विरोध कम तब होता है जब वे मानते हैं कि नीति वास्तव में उत्सर्जन को कम करेगी। नीति उनकी गोपनीयता का उल्लंघन नहीं करती। नीति उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन महसूस नहीं कराती। उदाहरण के लिए, जर्मनी में लोग छोटी दूरी की हवाई उड़ानों पर प्रतिबंध के प्रति कम विरोध दिखाते हैं बनिस्बत कार प्रतिबंध के। इसका कारण यह हो सकता है कि रेल यात्रा एक वास्तविक विकल्प है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि केवल यह तय करना कि कौन सा व्यवहार बदलना है, पर्याप्त नहीं है। नीतियों को इस तरह से डिजाइन करना चाहिए कि लोग उन्हें प्रभावी और निष्पक्ष समझें। जब लोग मजबूरी महसूस करते हैं, तो उनका विरोध बढ़ सकता है और अन्य जलवायु नीतियों का समर्थन घट सकता है।

इसलिए सरकारों और नीति निर्माताओं के लिए जरूरी है कि वे जीवनशैली बदलने वाली नीतियां लागू करते समय लोगों की भावना और विकल्पों को ध्यान में रखें। केवल नियम बनाना ही पर्याप्त नहीं, उन्हें समझदारी और समानता के साथ लागू करना होगा। अंत में, जीवनशैली में बदलाव जरूरी है, लेकिन इसे ऐसा तरीके से लागू किया जाना चाहिए कि लोग इसे अपनाएं और इसके प्रति सकारात्मक रहें। तभी जलवायु परिवर्तन से लड़ने में वास्तविक सफलता मिल सकती है।

('डाउन-टू-अर्थ' से साभार)

***

भागो नहीं

भागो नहीं, दुनिया को बदलो
ईश्वर का तो, नाम ही मत लो।

खुद से ही करनी होगी पहल
अभी वक्त है, समय पर लड़ लो।

कहाँ ढूंढोगे, चिराग और जिन्न
मेहनत से, खुद ही को घस लो।

मुख से जन्मों कि उससे पहले
विज्ञान की चार किताबें पढ़ लो।

वो बना न दें, हथियार तुम्हें
खुद को पहले, कलम में गढ़ लो।

मंदिर दिखे तो,आँखें मूँदो
मस्जिद से कहीं आगे बढ़ लो।

ये समय-काल, अंधभक्ति का है
कबीर बनों और कमर को कस लो।

तब राहुल सा देना हिमालय लाँध
जब शुतुरमुर्ग कहे, रेत में धँस लो।

बच्चा लाल 'उन्मेष'

तर्कशील आत्मचिंतन

नवनीत

हमारे समाज में आत्मचिंतन की बहुत कमी है। आरंभ से ही, अधिकांश मनुष्य रूढ़िवादी विचारों और रीति-रिवाजों को बिना किसी संदेह के स्वीकार करते आए हैं। चाहे वह पौराणिक घटनाएँ हों, सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाज हों या ईश्वर का अस्तित्व। मनुष्य ने इन घटनाओं पर शायद ही कभी प्रश्न उठाए हों। आज, मनुष्य अनेक अतार्किक धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन कर रहे हैं। किसी भी घटना के पीछे के कारण को जानने के बजाय, मनुष्य उसे यथावत स्वीकार कर लेता है। 'क्यों' जानने की प्रवृत्ति मनुष्य की तर्कशीलता का प्रमाण है। तर्कशीलता ही मनुष्य में आत्म-चिंतन का गुण उत्पन्न करती है। आत्म-चिंतन का गुण रखने वाला व्यक्ति समाज की प्रत्येक घटना और जीवन के प्रत्येक पहलू पर निष्पक्ष और स्वतंत्र विचार रखता है। ऐसा व्यक्ति प्रत्येक घटना को तर्क की कसौटी पर परखता है। एक तर्कशील व्यक्ति आत्मविश्वासी होता है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति अपनी सफलता के लिए किसी दैवीय शक्ति पर निर्भर नहीं होता। उसका अपना चिंतन होता है। केवल वही व्यक्ति सफल होता है जो अपनी क्षमताओं पर विश्वास रखता है। शहीद भगत सिंह एक महान तर्कशील विचारक थे। अपने लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' में ईश्वर के अस्तित्व की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'हम बच्चों को शुरू से ही यह सिखाना शुरू कर देते हैं कि ईश्वर जो कुछ भी करता है, वो मनुष्य नहीं कर सकता।' यह विचार बच्चों के मन में बैठ जाता है और उनका आत्मविश्वास हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति अपनी सफलता के लिए किसी दैवीय शक्ति पर निर्भर रहता है, वह कभी सफल नहीं हो सकता। वह अपनी असफलता को भाग्य या ईश्वर की इच्छा मानकर शांत हो जाता है। इसलिए तर्कशील सोच अपनाकर हमें आत्मविश्वासी बनना चाहिए।

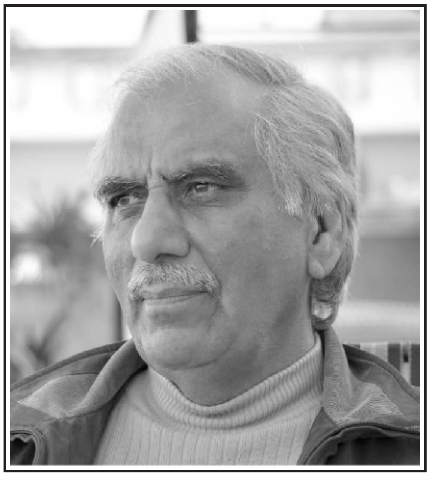
82849-51199

डा. ऐच ऐन पटवारी : एक बेबाक तर्कशील व्यक्तित्व

-अभिनव

मेरी मुलाकात डॉक्टर साहब से 2008 में हुई थी जब मैंने नया-नया फेसबुक चलाना शुरु किया।

मैं उस समय बड़ा उत्सुक रहता था कि मैं ईश्वर के बारे में कुछ जानू लेकिन मेरी आस्था हिंदू धर्म में उतनी मजबूत नहीं थी जितनी कि सिख धर्म में थी तो हुआ यूं कि मेरी इस उत्सुकता ने मेरे लिए कुछ नए दरवाजे खोलें मेरे जीवन में कुछ ऐसे लोग आए जिन्होंने मुझे यह जानकारी देने की कोशिश कि की परमात्मा नाम की कोई चीज नहीं होती। सृष्टि किसी के हाथ का कोई खिलौना नहीं है। उस समय मैंने जिंदगी में पहली बार एक शब्द सुना वह था- नास्तिक,बस धीरे-धीरे मैंने नास्तिक को जानने की कोशिश की , वही मेरी जिंदगी का टर्निंग पॉइंट था जब मुझे केई दोस्तों ने मजबूर किया कि भाई तुम अपना फेसबुक अकाउंट ओपन करो और मैंने अपना फेसबुक अकाउंट ओपन किया उसी सोच के लोग खोजते खोजते मेरी मुलाकात डा. ऐन ऐच पटवारी जी से हो गेई जो मेरे घर से कोई 12-15 किलोमीटर दूर तलाब तिल्लो में रहते थे। शुरू में बातचीत फेसबुक पर हुई, फिर नंबर एक्सचेंज हुआ और आखिरकार मैं उनके घर पहुंच गया। यहीं से मेरा असली नास्तिकता का सफर शुरू हुआ।



पहली मुलाकात आज भी याद है। उनका घर किताबों का खजाना था – संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू की किताबों से भरा पड़ा। मैं तो सोचता था कि पढ़ने वाले लोग सिर्फ गीता, रामायण या वेद पढ़ते होंगे, लेकिन यहां सब कुछ अलग था।

डॉक्टर साहब सशक्त इच्छाशक्ति वाले, तेज-तर्रार और तर्क में निपुण इंसान थे। उनकी बातों ने मुझे अंदर तक हिला दिया। लगा जैसे मेरी 27 साल की पढ़ाई और समाज की परंपरागत सोच मिट्टी के महल की तरह ढह गई हो। उन्होंने मुझे समझाया कि जिन ग्रंथों को मैं परमात्मा की सच्चाई मानता आया था, वे दरअसल इंसानों द्वारा लिखे गए हैं और वह परमात्मा, जिसे मैं सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी मानता था – वह कहीं अस्तित्व में ही नहीं है।

Epicurus का यह मशहूर कहावत मैंने सुना था-

''यदि ईश्वर बुराई को रोकना चाहता है, परन्तु ऐसा करने में असमर्थ है, तो वह सर्वशक्तिमान नहीं है। यदि वह सक्षम है, परन्तु ऐसा करने में असमर्थ है, तो वह दुष्ट है। यदि वह सक्षम और इच्छुक दोनों है, तो बुराई का स्रोत क्या है? यदि वह न तो सक्षम है और न ही इच्छुक, तो उसे ईश्वर क्यों कहा जाए?''

उस दिन के बाद वापसी नामुमकिन हो गई। डॉक्टर साहब ने मुझे दर्जनों किताबों के संदर्भ दिए, कई किताबें भेंट कीं और ऐसी शख्सियतों से परिचय कराया जिन्होंने साबित कर दिया कि नास्तिकता के बीज इस धरती पर हजारों साल पुराने हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और क्रिटिकल थिंकिंग का दमन किस तरह से पंडित पुरोहित और मुला करते रहे हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर डॉक्टर साहब के विचार और नजरिया एकदम क्लियर था हर बात पर उनकी पकड़ और उसका विश्लेषण वैज्ञानिक दृष्टिकोण की मध्य नजर से ही करते थे।

डॉक्टर साहब का पूरा जीवन संघर्षों से भरा था। बचपन में ही बारामूला में उनके पिता को कट्टरपंथियों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी। परिवार की आर्थिक स्थिति खराब थी, फिर भी पढ़ाई में होनहार होने के कारण उन्होंने सरकारी खर्चे पर रोहतक से डॉक्टरेट पूरी की।

छात्र जीवन में वे ट्रेड यूनियन में सक्रिय रहे, कम्युनिस्ट विचारधारा से गहराई से जुड़े और पार्टी में भी योगदान दिया। क्रांतिकारी सोच के कारण कॉलेज से रस्टिकेट भी हुए। अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना उनके किरदार का एक हिस्सा था ।

आयुर्वेद की शिक्षा पूरी करने के बाद पूंछ में आयुर्वेदिक डॉक्टर के रूप में नियुक्ति हुई। वहां उनके कई किस्से आज भी लोकप्रिय हैं।

2002 में पत्नी के निधन के बाद उन्होंने दोनों बच्चों को अकेले संभाला। आज दोनों बच्चे अच्छी तरह सेटल्ड हैं।

वे लंबे समय तक अकेले रहे। अकेलेपन की बात करने पर वे मुस्कुराकर कहते, ''हम रेशनलिस्ट हैं। यह सब मेरी तर्कसंगत सोच की वजह से ही संभव हुआ। मैंने कभी जिंदगी को परमात्मा के हाथों में नहीं सौंपा। मेरे लिए परमात्मा न कभी था, न कभी होगा।''

पत्नी के जाने के बाद उन्होंने अपने आप को और मजबूत बनाया संस्कृत पढ़ना शुरू किया और इतना आगे बढ़ गए कि लगभग सभी प्रमुख धर्मग्रंथ उन्हें कंठस्थ हो गए। उनकी याददाश्त लाजवाब थी। कोई कट्टरपंथी श्लोक पढ़कर मायावी प्रभाव दिखाने की कोशिश करता, तो डॉक्टर साहब तुरंत बता देते – यह किस ग्रंथ का कौन सा श्लोक है, उच्चारण कितना गलत है और अर्थ को कैसे तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है।

एक दिलचस्प किस्सा- एक बार वे किसी मित्र के बेटे के जन्मदिन पर गए। पूजन में पंडित जी ने श्लोक पढ़े, लेकिन वे श्लोक तो मरणोपरांत वाले थे! डॉक्टर साहब हैरान रह गए। पूजन खत्म होने पर उन्होंने पंडित जी को अलग ले जाकर उनकी तारीफ की। पंडित जी खुश हो गए। फिर डॉक्टर साहब ने पूछा, ''आप इतने बड़े विद्वान हैं, फिर जन्मदिन पर मृत्यु-संस्कार वाले श्लोक क्यों पढ़े?''

पंडित जी का चेहरा फीका पड़ गया। वे चुपके से हाथ जोड़कर बोले, ''प्लीज किसी को मत बताना। हमें जो रटाया जाता है, वही पढ़ देते हैं।''

डॉक्टर साहब संविधान के गहरे जानकार थे। 2014 के बाद के राजनीतिक हालात उन्होंने पहले ही भांप लिए थे। कट्टरपन को लेकर उनकी चिंता गहरी थी। वे अक्सर यह शेयर सुनाते-

''बर्बाद गुलिस्ताँ करने को बस एक ही उल्लू काफ़ी था
हर शाख़ पे उल्लू बैठा है, अंजाम-ए-गुलिस्ताँ क्या होगा''

उनके प्रिय लेखक थे – क्रिस्टोफर हिचेंस, रिचर्ड डॉकिन्स, शशि थरूर, कार्ल सागन, स्टीफन हॉकिंग, राहुल सांकृत्यायन, अल-बिरूनी, कार्ल मार्क्स, पेरियार, ओशो – लेकिन सबसे ज्यादा खुशवंत सिंह। खुशवंत सिंह की किताबों से मेरा परिचय भी उन्होंने ही कराया। खाने-पीने और कुकिंग का उनको बहुत शौक था कहीं शाम में मैंने उनके घर उनके साथ बीताई वहां हम दोनों खाते-पीते, गाते और खुशवंत सिंह की चर्चा करते।

एक मशहूर किस्सा वे सुनाते – लाहौर में उनकी दुकान पर बाबा नानक की तस्वीर लगी थी। दादा-चाचा पूजा करते तो कहते, ''हे बाबा नानका, आसी कट वी तोलने हां, पर तेरा नाम वी जरूर लैने हां।''

वे वकालत के मामलों पर भी गहरी नजर रखते और अक्सर खुशवंत सिंह की किताब का संदर्भ देते और यह शेयर सुनाते :

''पैदा हुआ वकील तो शैतान ने कहा,
'लो आज हम भी साहिब-ए-औलाद हो गए।'''

अहमद फैज, गालिब की शायरी, पुरानी फिल्मी गाने, साहिर लुधियानवी – हर विषय पर उनकी रुचि थी। संगीत, साहित्य और कला के प्रति मेरी रुचि अगर जागी, तो उसका बड़ा श्रेय डॉक्टर साहब को ही है। मेरी लाइब्रेरी आज भी उनकी सुझाई और भेंट की हुई किताबों से भरी है।

वे जम्मू के तर्कशील कार्यक्रमों में हमेशा शामिल होते। गदर बाबों के मेले में जालंधर हम साथ जाते। कई बार जम्मू में रेशनलिस्ट लोगों को इकट्ठा करने की कोशिश की, लेकिन संस्था नहीं बन पाई। फिर भी अकेले उन्होंने अपना लक्ष्य कभी नहीं छोड़ा। कई संगठनों को आर्थिक मदद भी दी।

पिछले कुछ सालों में उनकी सबसे बड़ी चिंता थी – देश में वैज्ञानिक सोच का दमन। हमारी महफिलें अक्सर इसी चिंता पर खत्म होतीं। फिर इकबाल का शेर सुनाकर हम खुद को संभाल लेते-

''वतन की फ़िक्र कर नादान!
मुसीबत आने वाली है
तेरी बर्बादियों के मश्वरे हैं आसमानों में
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदुस्तान वालों
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में''

वे खाने-पीने के शौकीन थे। 70 की उम्र में भी जिम जाते थे। बाद में सुबह-शाम की वॉकिंग जारी रखी। 2026 में छाती की समस्या शुरू हुई। जम्मू से उन्हें बेहद प्यार था, लेकिन सेहत बिगड़ने पर बेटी के पास जयपुर चले गए। वहां पार्किंसन और डिमेंशिया ने उन्हें घेर लिया। वे किसी पर बोझ बनना नहीं चाहते थे।

12 मार्च 2026 को जब मैं उनसे मिलने जयपुर गया, उन्होंने मुझे गले लगाया। लेकिन उनकी आंखों में सिर्फ यही चिंता थी कि वह किसी पर बोझ नहीं बनना चाहते और ना ही वह जम्मू छोड़ना चाहते थे गालिब की ये पंक्तियां उन्होंने थरथराती आवाज में कही:

''रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो...
पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जाइए तो नौहा-ख़्वाँ कोई न हो।''

22 मार्च 2026 को उनकी बेटी का फोन आया – ''अभिनव, डॉक्टर साहब अब इस दुनिया में नहीं रहे।''

उस पल मुझे ऐसा लगा जैसे तूफान में जहाज को किसी ने अकेला छोड़ दिया हो।

डॉक्टर साहब हमेशा कहते थे कि मौत के समय भी वे भ्रमों की शरण नहीं लेंगे। हम अक्सर कार्ल सागन के बारे में चर्चा करते थे। कार्ल सागन की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ऐन ड्रूयन से बार-बार पूछा जाता था कि क्या प्रसिद्ध नास्तिक कार्ल अंत समय में बदल गए और ईश्वर पर विश्वास करने लगे?

ऐन ड्रूयन का जवाब हमेशा यही होता था:

''कार्ल ने अपनी मौत का सामना अटूट साहस के साथ किया। उन्होंने कभी भ्रमों या की शरण नहीं ली।''

क्रिस्टोफर हिचेंस ने भी कहा था कि अगर मौत की बिस्तर पर कोई धर्मांतरण हो भी जाए, तो वह सिर्फ बहकावे का नतीजा होगा क्योंकि उस समय इंसान का दिमाग उसके कंट्रोल में नहीं होता सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो गई होती है और दवाइयां के कारण इंसान भ्रम में चला जाता है इसलिए अंतिम समय की विचारधारा या तजुर्बा दिमाग में पैदा होने वाली सोच या केमिकल्स जो दवाइयां से पैदा होते हैं का नतीजा होती हैं ।

डॉक्टर साहब ने भी अंत तक अपने तर्कशील विश्वास को नहीं छोड़ा। वे हमेशा देह दान के पक्षधर थे, लेकिन डिमेंशिया के कारण अंतिम समय में सब उनके बस में नहीं रहा जिसके चलते उनका देह संस्कार जयपुर में ही कर दिया गया ।

''जिंदगी तेरा मुकद्दर मौत है
रोज हम करते हैं तेरी देखभाल
और नतीजा वही होता है –
नब्ज डूबी, सांस उखड़ी, किस्सा खत्म हो गया
अब हमेशा के लिए बीमार अच्छा हो गया।''

डॉक्टर पटवारी जी का जीवन संघर्ष, विद्वता, साहस और तर्क का जीवंत उदाहरण है। मुझे और मेरे पूरे परिवार को तर्कशील बनाने में डॉक्टर साहब का बहुत योगदान रहा बल्कि सोचने, सवाल करने और सच्चाई की तलाश करने की यह अद्भुत आदत डॉक्टर साहब की ही देन है।

कुछ लोगों के जाने के बाद उनका जीवन एक यादगार बनकर रह जाता है बस उसी तरह से डॉक्टर साहब भी हमारे जीवन का एक हिस्सा बनकर हमारी यादों में रहेंगे।

''कौन कहता है कि मौत आई तो मर जाऊँगा
मैं तो दरिया हूँ समुंदर में उतर जाऊँगा।''

कुप्रथाओं के कारण

दुनिया भर में कुप्रथाओं के कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण अशिक्षा और वैज्ञानिक सोच की कमी है। शिक्षा और वैज्ञानिक सोच की कमी के कारण लोग पुराने रीति-रिवाजों को बिना सोचे-समझे अपनाते रहते हैं और उनमें सुधार की आवश्यकता को नहीं समझते।

दूसरा कारण गरीबी और आर्थिक असमानता है। गरीब परिवार सामाजिक दबाव और असुरक्षा के कारण कुप्रथाओं का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए, दहेज प्रथा, धार्मिक कर्मकांड में आर्थिक बोझ के बावजूद लोग समाज के डर से इसे निभाते हैं।

सामाजिक परंपराएँ और रूढ़िवादी सोच भी कुप्रथाओं को बढ़ावा देती हैं। लोग ''लोग क्या कहेंगे'' के डर से पुरानी प्रथाओं को छोड़ नहीं पाते। जाति व्यवस्था और ऊँच-नीच की भावना भी कई कुप्रथाओं की जड़ है।

इसके अलावा, महिलाओं की कमजोर स्थिति और लैंगिक असमानता भी एक बड़ा कारण है। समाज में महिलाओं को समान अधिकार और अवसर नहीं मिलने से बाल विवाह, दहेज और घरेलू हिंसा, अंधविश्वास जैसी समस्याएँ बनी रहती हैं।

अंतत:, जागरूकता की कमी और कानूनों का कमजोर क्रियान्वयन भी कुप्रथाओं को खत्म करने में बाधा बनता है। इसलिए शिक्षा, तर्कशील समझ,जागरूकता और सामाजिक सुधार के माध्यम से ही इन कुप्रथाओं को समाप्त किया जा सकता है।

युद्ध का असर

–ललित मौर्या

युद्ध के बीच भले ही फिलहाल अनाज की पर्याप्त आपूर्ति है, लेकिन महंगी ऊर्जा और उर्वरक संकट ने वैश्विक बाजार में अनिश्चितता को और गहरा दिया है। दुनिया के एक हिस्से में चल रहे युद्ध का असर अब धीरे-धीरे पूरी दुनिया की थाली तक पर दिखाने लगा है। महंगा कच्चा तेल, उर्वरक की बढ़ती कीमतें और खेती की बढ़ती लागत, ये तीनों मिलकर एक नई खाद्य महंगाई की जमीन तैयार कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) ने अपनी ताजा रिपोर्ट में खुलासा किया है कि वैश्विक खाद्य कीमतों में लगातार दूसरे महीने उछाल दर्ज किया गया। रिपोर्ट के मुताबिक इसकी मुख्य वजह मध्य पूर्व में बढ़ते संघर्ष के कारण ऊर्जा कीमतों में आई तेजी है, जिससे खाद्य बाजारों पर दबाव बढ़ गया है। हालांकि राहत की बात यह है कि मौजूदा स्तर अभी भी मार्च 2022 के रिकॉर्ड स्तर से करीब 20 फीसदी कम है, लेकिन पिछले साल के मुकाबले कीमतें फिर बढ़ने लगी हैं, जो आने वाले समय में महंगाई का संकेत हो सकता है। राहत की खबर यह है कि फिलहाल अनाज की कमी नहीं है, लेकिन अगर हालात लंबे समय तक ऐसे ही रहे, तो आने वाले महीनों में दुनिया को खाने की बढ़ती कीमतों के दौर का सामना करना पड़ सकता है। यानी युद्ध भले ही सीमाओं पर लड़ा जा रहा हो, लेकिन उसकी कीमत दुनिया का आम आदमी अपनी रसोई में चुकाएगा।

खाद्य मूल्य सूचकांक में बढ़ोतरी

रिपोर्ट से पता चला है कि एफएओ फूड प्राइस इंडेक्स मार्च में बढ़कर 128.5 अंकों पर पहुंच गया, जो फरवरी के मुकाबले 2.4 फीसदी अधिक है। वहीं पिछले साल मार्च से तुलना करें तो इसमें एक फीसदी से अधिक का इजाफा दर्ज किया गया है।

देखा जाए तो यह बढ़ोतरी अचानक नहीं हुई। इसकी शुरुआत तेल से होती है। जब युद्ध के बादल गहराते हैं, तो कच्चा तेल महंगा हो जाता है। जब तेल महंगा होता है, तो ट्रैक्टर, खाद से लेकर फसल ढोने तक हर कुछ महंगा हो जाता है। ऐसे में जब कृषि लागत बढ़ती है तो इसका असर आम आदमी की थाली पर पड़ता है। आंकड़े दर्शाते हैं कि सबसे ज्यादा असर गेहूं पर दिखा है। गेहूं की वैश्विक कीमतों में 4.3 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है।

क्यों बढ़ीं अनाज की कीमतें ?

इसकी वजह पर नजर डालें तो अमेरिका में सूखे ने फसल की उम्मीदें कम कर दीं, वहीं ऑस्ट्रेलिया में महंगे उर्वरक के कारण किसान बुवाई में कमी कर सकते हैं। इसी तरह मक्के की कीमतों पर भी दबाव है, क्योंकि महंगे तेल के कारण एथेनॉल (बायोफ्यूल) की मांग बढ़ने की संभावना है। मक्के की कीमतों में 0.9 फीसदी की वृद्धि हुई क्योंकि दुनिया में इसकी उपलब्धता अभी पर्याप्त है। इसी तरह जौ और ज्वार भी महंगे हुए हैं। हालांकि चावल की कीमतों में कुछ गिरावट आई है, लेकिन यह राहत अस्थाई मानी जा रही है। बता दें कि पिछले महीने की तुलना में धान की कीमतों में तीन फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है। कुल मिलाकर देखें तो मार्च में अनाज मूल्य सूचकांक औसतन 110.4 अंक रिकॉर्ड किया गया, जो फरवरी के मुकाबले 1.5 फीसदी और पिछले साल की तुलना में 0.6 फीसदी अधिक है।

तेल चीनी में भी दिखी तेजी

रिपोर्ट से पता चला है कि मार्च में सबसे ज्यादा बढ़ोतरी वनस्पति तेल में देखी गई। खाद्य तेल मूल्य सूचकांक 5.1 फीसदी बढ़कर 183.1 अंक पर पहुंच गया। इसमें लगातार तीसरे महीने बढ़ोतरी दर्ज की गई। वहीं सूचकांक एक साल पहले के स्तर से भी 13.2 फीसदी अधिक है। इसके साथ ही पाम ऑयल की कीमतें 2022 के बाद सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गईं।

कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों के कारण बायोफ्यूल की मांग बढ़ रही है, जिससे सोयाबीन तेल की कीमतें में भी उछाल आया है। इसी तरह ब्लैक सी क्षेत्र में आपूर्ति की कमी से सूरजमुखी तेल महंगा हुआ। यानी महंगी ऊर्जा, बायोफ्यूल और खाद्य तेल महंगें होने का सीधा असर बाजार में दिखाई दे रहा है। रिपोर्ट में सामने आया है कि मार्च में चीनी की कीमतों में 7.2 फीसदी की बड़ी बढ़ोतरी हुई, क्योंकि ब्राजील ज्यादा

से ज्यादा गन्ने का उपयोग एथेनॉल बनाने में कर सकता है। देखा जाए तो वैश्विक बाजार में चीनी की कीमतें नवंबर 2025 के बाद सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गई हैं। रिपोर्ट में यह भी सामने आया है कि मध्य पूर्व में चल रहे युद्ध से व्यापार मार्ग प्रभावित होने की आशंका है। हालांकि भारत और थाईलैंड में अच्छी फसल से कीमतों पर ज्यादा दबाव नहीं पड़ा।

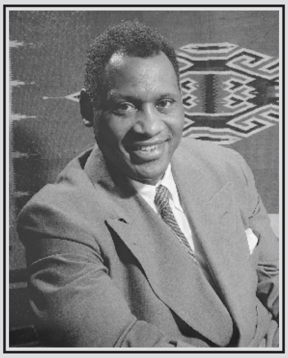
दूध-मांस हुए महंगे

एक रिपोर्ट के मुताबिक डेयरी कीमतों में जुलाई 2025 के बाद पहली बार बढ़ोतरी हुई है। मार्च 2026 में डेयरी मूल्य सूचकांक 120.9 अंक दर्ज किया गया, जो पिछले महीने के मुकाबले 1.2 फीसदी की बढ़ोतरी को दर्शाता है। लेकिन एक साल पहले के स्तर से अभी भी 18.7 फीसदी नीचे है। इस दौरान स्किम्ड मिल्क पाउडर, बटर और फुल क्रीम मिल्क पाउडर महंगे हुए हैं। हालाँकि चीज की कीमतों में गिरावट ने कुल बढ़ोतरी को सीमित रखा हुआ है। मांस की कीमतों भी इस दौरान एक फीसदी बढ़ी हैं। मार्च में मांस मूल्य सूचकांक 127.7 अंक दर्ज किया गया, जो फरवरी से एक फीसदी अधिक है, जबकि पिछले साल के मुकाबले इसमें आठ फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज की गई।

भविष्य में कीमतों में आ सकता है बड़ा उछाल

एफएओ के मुख्य अर्थशास्त्री मैक्सिमो टोरेरो ने चेतावनी दी है कि, ''अगर यह संघर्ष लंबा चला और उर्वरक व ऊर्जा की कीमतें ऊंची रहीं, तो किसानों को कठिन फैसले लेने पड़ेंगे। इससे किसान कम खाद का इस्तेमाल करेंगें, बुवाई घटेगी और किसान कम लागत वाली फसलों की ओर शिफ्ट होने को मजबूर हो जाएंगे। इन फैसलों का असर तुरंत नहीं, लेकिन आने वाले सीजन में पैदावार पर पड़ेगा, और तब खाद्य कीमतों में बड़ा उछाल आ सकता है।'' कुल मिलाकर, दुनिया फिलहाल खाद्य संकट में नहीं जूझ रही, लेकिन खाद्य महंगाई के एक नए दौर की दहलीज पर जरूर खड़ी है। युद्ध, महंगी ऊर्जा और उर्वरक संकट ने खेती की लागत बढ़ा दी है, और अगर यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहती है, तो आने वाले सीजन में उत्पादन घट सकता है और खाद्य कीमतों में बड़ी तेजी देखने को मिल सकती है। विशेषज्ञ पहले ही चेतावनी दे चुके हैं कि असली असर आने वाले महीनों में दिखेगा। आज बाजार में अनाज है, लेकिन अनिश्चितता भी है। कीमतें धीरे बढ़ रही हैं, लेकिन दबाव लगातार बन रहा है। और अगर हालात नहीं बदले, तो आने वाले समय में महंगाई सिर्फ एक आर्थिक खबर नहीं, बल्कि हर घर की रसोई की सबसे बड़ी चिंता बन सकती है।

क्रांतिकारी गायक पॉल रॉबसन



दुनिया के क्रांतिकारी गायक पॉल रॉबसन एफ्रो अमरीकन समुदाय के जनगायक थे जिन्होंने न सिर्फ अपने गीतों में गोरे पूंजीपति मालिकों द्वारा अश्वेत अमरीकी श्रमजीवी जनता के दुख दर्दों को उकेरा बल्कि वे अमरीकी साम्राज्यवाद के नेतृत्व वाली साम्राज्यवादी ताकतों के विरोध में अपने गीतों को अपना हथियार बनाया। उन्होंने स्पेन में हिटलर और मुसोलिनी के मार्गदर्शन में हुए फासीवादी प्रतिक्रांति के खिलाफ, दुनिया के तमाम मेहनतकशों और उत्पीड़ित जनता के संघर्ष का समर्थन करते हुए पूंजीवादी युद्ध के खिलाफ शांति आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। उनके द्वारा सोवियत संघ और समाजवादी आंदोलन का समर्थन करने के कारण अमरीकी सरकार ने उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया और उनके विदेश जाने पर प्रतिबंध लगा दिया। यही नहीं चालीस के दशक के अंत में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शीतयुद्ध के दौरान अमरीका में घोर कम्युनिस्ट विरोधी मकार्थी युग में उन पर ''अन अमेरिकन एक्टिविटी'' कानून के तहत उनके जन गीत गाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।अमरीकी सरकार के संरक्षण में गोरे फासिस्ट गुंडों द्वारा उनके ऊपर पिकस्किल में प्राणघातक हमला कर उन्हे जान से मारने की कोशिश भी हुई। लेकिन कोई भी दमन/अत्याचार उन्हे शोषित पीड़ित जनता के पक्ष में गीत गाने से नहीं रोक सके।ऐसे महान जन गायक कॉमरेड पॉल रॉबसन को लाले लाल लाल सलाम।

''वो हमें गीत गाने से रोकना चाहते हैं नीग्रो भाई मेरे पॉल रॉबसन''

बेशक युद्ध जारी है

-मनजीत मानवी

न वजह स्पष्ट है युद्ध की
नित बदल रहा है मकसद भी
कभी यह कहते कभी वह कहते
खुद जाने ना ये क्या कहते
हर चाल में हेरा फेरी है
लेकिन युद्ध जारी है

अंधे विस्तार की सनक लिए
विध्वंस के द्वार की धमक लिए
ये सरफिरे हाथ मिलाते हैं
औरों को साथ बुलाते हैं
खूनी ताकत की खुमारी है
इसीलिए युद्ध जारी है

जल, थल, अंबर सब कांप रहे
छल, कपट पिशाच से नाच रहे
कहीं क्लस्टर बम, कहीं यूरेनियम
मिसाइल, ड्रोन, टैंकों का उधम
सकते में दुनिया सारी है
लेकिन युद्ध जारी है

नभ से धुआँ काला बरस रहा
हवाओं में देखो ज़हर घुला
हरी-भरी धरा वीरान हुई
सागर को सुरंगे लील रही
हर दिशा मे मची त्राहि है
लेकिन युद्ध जारी है

मलबे के नीचे प्राण दबे
कितनी लाशों के ढेर बिछे
बच्चों के सपने खाक हुए
स्कूल हस्पताल राख हुए
धरती का सीना भारी है
लेकिन युद्ध जारी है

सभ्यता संस्कृति की नींव हिली
लूट और हत्या की लहर चली
मानवता तार पे लटकी है
नेकी की साँसें अटकी हैं
सुविधाओं पे मार करारी है
लेकिन युद्ध जारी है

ईरान या गज़ा बहाने हैं
मक़सद वह बाग मिटाने हैं
जो बिना इजाज़त खिलते हैं
जो अपने दम पर पलते हैं
आज़ादी सबको प्यारी है
बेशक युद्ध जारी है

ऐ मौत के सौदागर तू सुन
कितने भी कपट के जाले बुन
हम हर विपदा से उलझ चुके
सब खेल तुम्हारा समझ चुके
हमने कब हिम्मत हारी है
बेशक युद्ध जारी है

हम नहीं डरेंगे धमकी से
हर दिन नई आतंकी से
तेरे टैरिफ और प्रतिबंधों से
तेरे बम, गोली और टैंकों से
हमने भी की तैयारी है
बेशक युद्ध जारी है

अपने सब रंग सुगंध लिए
संप्रभु धरा की गंध लिए
असले को कर तीतर बीतर
हम खिलेंगे मलबों के भीतर
सुन आज हमारी बारी है
बेशक युद्ध जारी है

बम बारूद के मलबे से
सुन प्रीत के अंकुर फूटेंगे
फिर पत्ता पत्ता महकेगा
फिर गीत अमन के गूँजेंगे
हम अमन चैन के वारिस हैं
शांति की डगर हमारी है

हम यूवा, जवान, किसान सभी
हम अमनपरस्त इंसान सभी
हम जंग मिटा कर दम लेंगे
हम न्याय की राह न छोड़ेंगे
एक दिन जीत हमारी है
बेशक तेरा युद्ध जारी है !!!

यह जीवन मरने के बाद भी समाप्त नहीं होता अगर लोगों को समर्पित कर दिया जाए, कुछ लोगों से सीखें और कुछ लोगों को सिखाएं।
-प्रोफैसर मोहन सिंह

इंकलाब जिंदाबाद के नारे को जमीन पर उतारना जरूरी है

–मुनेश त्यागी

भारत के क्रांतिकारी इतिहास में मौलाना हसरत मोहानी ने 1921 में ''इंकलाब जिंदाबाद'' का नारा सबसे पहले दिया था। इसी के साथ उन्होंने ''संपूर्ण आजादी'' का नारा भी दिया था। इन दोनों नारों को भारत के क्रांतिकारी आंदोलन ने अपनाया और इन्हें जनता के नारे बनाएं और क्रांतिकारी ताकतों को, उनके इर्द–गिर्द इकट्ठा किया। बाद में 1929 में कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में संपूर्ण आजादी का नारा अपनाया।

इंकलाब जिंदाबाद के नारे को भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त और विजय कुमार ने 8 अप्रैल 1929 को असेंबली में पर्चा फेंकते वक्त लगाया था और हिंदुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्यों ने भारत के आजादी के आंदोलन और भारत के क्रांतिकारी इतिहास में सबसे पहले इस नारे का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया था। उसके बाद से आज तक यह नारा भारत का के किसानों, मजदूरों, नौजवानों, विद्यार्थियों और संघर्षरत जनता का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए जाने वाला नारा बना हुआ है। इसका आज भी कोई सानी नहीं है।

हालांकि इंकलाब का नारा सबसे पहले फ्रांसीसी क्रांति में इस्तेमाल किया गया था। दुनिया में सबसे पहले 1917 की रुसी क्रांति के बाद, इंकलाब जिंदाबाद के नारे और उसके उसूलों को धरती पर उतारा गया था। मगर भारत में ''इंकलाब जिंदाबाद'' के नारे का इस्तेमाल और रचना सबसे पहले 1921 में मौलाना हसरत मोहनी ने किया था और तभी से भारत की क्रांतिकारी और संघर्षरत ताकतों का, यह सबसे प्यारा, सम्मानित और क्रांतिकारी नारा बना हुआ है।

भारत और पूरी दुनिया में क्रांतिकारी शक्तियां और संघर्षरत ताकतें, अपनी बुनियादी समस्याओं का हल करने के लिए जो नारा इस्तेमाल करती हैं उनमें सबसे ज्यादा ''इंकलाब जिंदाबाद'' यानी "Long live Revolution" का नारा ही बुलंद किया जाता है, इसलिए यह नारा आज भी क्रांतिकारी दुनिया का सबसे बुलंद नारा बना हुआ है और जो ताकतें इस नारे को लगाती हैं वे अपने को धन्य समझती हैं, अपने को अहोभाग्य समझती हैं, अपने को क्रांतिकारी समझती हैं और उन्हें जनता भी क्रांतिकारी मानती है।

भगत सिंह और उनके साथी जब उन पर चल रहे मुकदमे के दौरान अदालत में आते थे तो उनके साथी जो मुख्य नारे लगाते थे, उनमें पहला नारा था ''इंकलाब जिंदाबाद'' और दूसरा नारा था ''साम्राज्यवाद मुर्दाबाद''। भगत सिंह और उनके साथियों को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने इस नारे को लोकप्रिय बनाया और इसे साम्राज्यवाद का विकल्प बनाया और इसे क्रांतिकारी और वैज्ञानिक समाजवादी व्यवस्था के रूप में पेश किया। इसके बाद से ही भारत में क्रांतिकारी व्यवस्था कायम करने के लिए किसानों और मजदूरों का यह प्रमुख नारा बन गया और आज भी उनका यह सबसे प्रमुख नारा बना हुआ है।

क्रांति और इंकलाब जिंदाबाद से, हिंदुस्तानी समाजवादी रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्यों का अभिप्राय था कि एक ऐसी व्यवस्था कायम की जाए जो मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धांतों पर आधारित हो, जिसमें किसानों मजदूरों का राज हो, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आजादी हो और जनता में समता, समानता, बराबरी, भाईचारा और धर्मनिरपेक्षता की भावना हो और पूरी व्यवस्था वैज्ञानिक समाजवादी सिद्धांतों पर आधारित हो।

भगत सिंह और हिंदुस्तानी समाजवादी गणतंत्र संघ के उनके तमाम साथी एक ऐसे ही समाज का निर्माण करना चाहते थे और ऐसे ही समाज का निर्माण करने के लिए वे शोषण, अन्याय, जुर्म, भेदभाव, ऊंच–नीच, छुआछूत, गैरबराबरी और छोटा बड़ा वाली सोच, संस्कृति और मानसिकता और इन पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बदलना और मूल रूप से खत्म करना चाहते थे और एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें सबको रोटी मिले, सबको रोजी मिले, सब को घर मिले, सब को रोजगार मिले, सबको समता, समानता और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आजादी मिले, समाज में भाईचारा कायम हो, समाज में सब मिलजुल कर रहें और समाज सांप्रदायिकता और जातिवाद के घुन और कैंसर से मुक्त हो, जिसमें ना अन्याय हो, ना शोषण हो, जिसमें ना गरीबी हो, ना अमीरी हो, ना भुखमरी हो, ना नग्नता हो, सब सुखी हों,

सब खुश हों, जिसमें पंचायती राज हो और प्राकृतिक संसाधनों पर सारे समाज का अधिकार हो और उनका प्रयोग पूरी जनता यानी किसानों, मजदूरों, शोषितों , पीड़ितों और तमाम मेहनतकशों के विकास के लिए, उसकी बढ़ोतरी के लिए और उन सबकी प्रगति के लिए किया जाए।

भगत सिंह और उनके साथियों के बाद इंकलाब जिंदाबाद का नारा भारत के किसानों, मजदूरों, नौजवानों, विद्यार्थियों, संघर्षशील जनता और क्रांतिकारी समाज की स्थापना करने वाले लोगों और वामपंथी दलों का मुख्य नारा बना हुआ है। 1921 में मौलाना हसरत मोहनी द्वारा रचे गए इस नारे को जनता में फैलाने और प्रचार-प्रसार करने का काम हिंदुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्यों के हिस्से में आया और शहीदे आजम भगत सिंह के नेतृत्व में उन्होंने इसका बखूबी इस्तेमाल किया और उसे भारत की जनता का मुख्य नारा बना दिया। इंकलाब जिंदाबाद, समाजवादी समाज और मार्क्सवादी आदर्शों पर आधारित समाज से हमारा यही मतलब है।

हालांकि पूंजीवादी, जातिवादी, सामंतवादी, संप्रदायवादी और भ्रष्टाचारी ताकतों को इस नारे से बहुत नफरत है। वे इंकलाब जिंदाबाद का नारा लगाने वाली ताकतों को पसंद नहीं करते, उनसे नफरत करते हैं और उनको नेशनाबूद करना चाहते हैं, उनको मठियामेट करना चाहते हैं। इसलिए यह नारा कभी भी उनकी सोच और मानसिकता का नारा नहीं बन सका है। वे आज भी इससे सबसे ज्यादा नफरत करते हैं।

इंकलाब जिंदाबाद के नारे को सही अर्थों में, सही मायनों में, आज जमीन पर उतारने की जरूरत है। इसको किसानों, मजदूरों और मेहनतकशों समेत सारी उत्पीड़ित, शोषित, अन्यायग्रस्त, अभावग्रस्त, दलितों, वंचितों और आदिवासियों का नारा बनाने की जरूरत है। केवल यही नारा उन सबकी किस्मत बदल सकता है, उनका विकास कर सकता है और उनको रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और बुढ़ापे की पेंशन का इंतजाम कर सकता है और इस देश में नए क्रांतिकारी वैज्ञानिक समाजवादी समाज की यानी इंकलाबी समाज की स्थापना कर सकता है और हिंदुस्तान को शहीदों के सपनों का, राजगुरु सुखदेव, भगत सिंह, बिस्मिल, अशफाक, रोशन और लाहिड़ी के सपनों का, नेहरू, सुभाष और अंबेडकर के सपनों का, भारत बना सकता है।

स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख क्रांतिकारी

भगवती चरण वोहरा



भगवती चरण वोहरा भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख क्रांतिकारी थे। उनका जन्म 1904 में लाहौर (अब पाकिस्तान) में हुआ था। वे बचपन से ही तेज बुद्धि और देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थे। उन्होंने अपनी शिक्षा लाहौर में प्राप्त की और आगे चलकर क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया।

भगवती चरण वोहरा हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के महत्वपूर्ण सदस्य थे। इस संगठन का उद्देश्य ब्रिटिश शासन को समाप्त कर भारत में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना था। वे एक कुशल लेखक और विचारक भी थे। उन्होंने ''द फिलॉसफी ऑफ द बम'' नामक प्रसिद्ध लेख लिखा, जिसमें उन्होंने क्रांतिकारी हिंसा के पीछे के तर्क को स्पष्ट किया और अंग्रेजों के दमन के खिलाफ संघर्ष का समर्थन किया।

वे भगत सिंह के घनिष्ठ सहयोगी और मित्र थे। उनकी पत्नी दुर्गा भाभी भी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय थीं। भगवती चरण वोहरा ने कई महत्वपूर्ण योजनाओं में भाग लिया और क्रांतिकारियों को संगठित करने में अहम भूमिका निभाई।

28 मई 1930 को बम परीक्षण के दौरान रावी नदी के किनारे एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी असामयिक मृत्यु से स्वतंत्रता आंदोलन को गहरा आघात पहुंचा। फिर भी, उनका साहस, त्याग और विचार आज भी युवाओं को देशभक्ति और संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं।

अवतार भाई का चले जाना...

-गुरमीत अंबाला

कुछ ऐसी हस्तियां इस दुनियां में आती हैं, जिनके सदा के लिए अलविदा कर जाने के बाद भी उनकी पदचाप लंबे समय तक महसूस होती रहती है, समाज में वैज्ञानिक चेतना की मशाल जगाने वाली ऐसी ही शख्सियत थे, अवतार भाई। यद्यपि उनका नाम अवतार सिंह गिल माता पिता ने रखा था, परंतु जाति, गोत्र, धर्म जैसी विभाजनकारी धारणाओं से ऊपर उठ कर उन्होंने अपने नाम के साथ 'भाई' लगाकर मानवता के लिए समर्पित हो गए, समाज की भलाई के लिए संघर्ष करना ही उनका उद्देश्य रहा।

14 मार्च 2026 को फोर्टीज हस्पताल, लुधियाना में 79 वर्ष की उम्र में उन्होंने अंतिम सांस ली, वे तो 22 फरवरी 2026 को अपने हमख्याल साथियों के लिए मिलने के लिए कनाडा, जो उनकी कर्म भूमि था, से आए थे 20 मार्च2026 को उन्होंने अपने विचारों के साथियों से मिलने के लिए ''जग जियूंदिया दे मेले'' कार्यक्रम रखा था लेकिन इससे पहले ही वे चले गए। 16 मार्च 2026 को उनकी पूर्व निर्धारित इच्छा का सम्मान करते हुए उनके परिवार,साथियों ने बिना कोई कर्मकांड, रूढ़िवादी सोच को अपनाते हुए उनके मृतक शरीर को फूलों और उनकी तस्वीरों से सजी एम्बुलेंस में सजा कर और क्रांतिकारी नारों के साथ अंतिम विदायगी दी और चिकित्सीय उपयोग हेतु ई .एस.आई. हस्पताल लुधियाना को प्रदान कर दिया। इससे पूर्व उनके निवास स्थान पर पंजाब के प्रमुख जन संगठनों ने उन्हें पुष्पांजलि अर्पित की और अपने अपने झंडे उन्हें सम्मान पूर्वक अर्पित किए उनके द्वारा पहले से ही निश्चित किए गए 20 मार्च के कार्यक्रम को उसी नाम ''जग जियूंदियां दे मेले'' के नाम से उनके लिए शोक सभा और आदरांजलि के नाम पर रखा गया। जिसमें पंजाब के प्रमुख सामाजिक संगठनों, विभिन्न यूनियन, तर्कशील सोसायटी, कनाडा, अमेरिका आदि से पहुंचे साथियों ने उन्हें आदरांजलि दी।



अवतार भाई जिला लुधियाना,पंजाब के गाँव कोठे जीवें के रहने वाले थे 1992में वे अपनी पत्नी और बच्चों के साथ कनाडा के ब्रिट्स कोलंबिया परवेंसी में वेंकूवर चले गए थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी, दो बेटियां और चार बेटे थे। विदेश जाने से पहले वे पंजाब स्टेट पावर कार्पोरेशन में कार्यरत रहे, इस दौरान वे टेक्नीकल सर्विसिज यूनियन के अध्यक्ष भी रहे। टेक्नीकल वर्कर्स यूनियन में कार्य करते हुए उन्होंने अकेले कर्मचारी आंदोलन में ही भाग नहीं लिया, बल्कि हर जुल्म, अन्याय के विरुद्ध निडरता के साथ आवाज उठाते रहे थे।उनसे कोई भी दिल खोल कर बातचीत कर सकता था।

1980-90 के समय को पंजाब में काले दिनों का दौर माना जाता है। उस समय बहुत से यूनियननिष्ट, तर्कशील, कम्युनिस्ट और प्रगतिशील लोग निशाने पर थे, अवतार भाई ने ऐसे समय में भी अपने आस पास चलते धरने प्रदर्शनों में सक्रिय भूमिका निभाई, वे बे खौफ हो कर हर जुल्मों सितम के विरोध में उतरते रहे थे।

कनाडा में जाकर उन्होंने अलग अलग काम करते हुए बाद में ट्रांसपोर्ट व्यवसाय को जीवन यापन के लिए अपना लिया। पंजाब में भी यूनियन में कार्य करते हुए वे विभिन्न संघर्ष शील संगठनों के संपर्क में रहते थे। वे लोकतांत्रिक इंकलाबी लहर से भी जुड़े रहे। 1995 में उनकी जिंदगी में वह अवसर आया जहां से बढ़ कर उन्हें कनाडा और पंजाब के लोगों के बीच लोकप्रिय बना दिया। 1995 में मूर्तियों के दूध पीने की अफवाह देश दुनियां में फैली, एक जागरूक नागरिक और वैज्ञानिक चिंतक होने के कारण उन्होंने वेंकूवर (कनाडा) में कम्युनिटी रेडियो से संपर्क किया और कहा कि यह सब अंधविश्वास है, किसी वैज्ञानिक चिंतक को बुला कर उसके विचार भी प्रेषित करो, रेडियो वालों ने उन्हें ही आकर अपनी बात रखने को कहा, उन्होंने तर्क देकर इसका खंडन किया,किसी रेडियो स्टेशन के माध्यम से प्रोग्राम का यह उनका पहला

अनुभव था, धीरे धीरे विभिन्न विषयों पर उन्हें स्थानीय रेडियो आमंत्रित करने लगा और यहीं से उनके मन में तर्कशील सोसायटी,कनाडा बनाने का विचार आया, रेडियो के माध्यम से उनकी जनतक पहचान बन चुकी थी फिर समान विचारों के लोगों को साथ लेकर उन्होंने वैंकूवर में काम शुरू कर दिया और 1998 में तर्कशील कल्चरल सोसायटी, कनाडा की स्थापना की। इसके बाद कनाडा के प्रमुख शहरों के साथियों से मिल कर उन्होंने सरी, वैंकूवर, ब्रह्मपटन,कैलगरी, एब्सफोरेड आदि शहरों में तर्कशील इकाइयां स्थापित की और वे बिना थके इस मुहिम में जुड़ गए। उम्र से संबंधित बीमारियों के चलते वे अस्वस्थ रहने लगे। उनकी किडनियां खराब हो गई थीं और वे डायलाईसिस पर आ गए थे लेकिन तर्कशील और वैज्ञानिक चेतना के कार्यक्रमों में स्वास्थ्य खराब रहने पर भी वे लगातार सक्रिय रहे। फेफड़ों की तकलीफ, दिल की बाईपास सर्जरी, एक आंख से खराब हो जाना आदि स्वास्थ्य समस्याएं भी उनके कदम नहीं रोक सकीं। वे तर्कशील और इंकलाबी नाटकों, प्रदर्शनियों, भाषणों, साहित्य के माध्यम से वे जीवन पर्यंत समाज में वैज्ञानिक चेतना फैलाते रहे, कनाडा में रहते हुए उन्होंने देखा कि भारतीय लोग जो वहां जीवन यापन के लिए गए हैं, भारत में रहते लोगों की तरह अंधविश्वास रूढ़ियों में फंसे हुए हैं। जिनके बीच वे अंधविश्वास मुक्ति के लिए जीवन पर्यंत लहलहाई रहे।

वे जहां तर्कशील सोसायटी कनाडा में सक्रिय थे, वहीं पंजाब और कनाडा के तर्कशील आंदोलन से जुड़े लोगों के बीच एक कड़ी भी थे। वे तर्कशील आंदोलन के साथ ही अन्य सामाजिक आंदोलनों में भी सक्रिय रहते थे। जिनमें उनकी भूमिका के लिए उन्हें सदा याद रखा जाएगा।

***

झूठ को झूठ साबित करने में लगती ऊर्जा

-कॉस्मो सिंह

हमारे तर्कशील मित्रों को अक्सर यह अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति या पत्रकार बिना किसी कारण के दावा करता है कि फलां स्थान पर पुनर्जन्म हुआ है या कोई 'चमत्कार' हो रहा है, या किसी विशेष स्थान का पानी पीने से इतने सारे लोग बीमारियों से ठीक हो गए हैं, इत्यादि। हम जानते हैं कि यह संभव नहीं है और इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, लेकिन इसे गलत साबित करने में बहुत समय और ऊर्जा लगती है। हम अपनी ओर से हर संभव जांच करके सच्चाई को सामने लाते हैं। लेकिन हर नई अफवाह के साथ, कुछ लोगों के मन में संदेह पैदा होता है, जिससे कुछ सदस्यों में झुंझलाहट भी उत्पन्न होती है। लेकिन इसका स्थायी समाधान यह है कि हमारे लोगों का हर घटना, हर परिघटना को देखने का नजरिया वैज्ञानिक हो। उन्हें हर बात और हर कथन को तर्क की कसौटी पर स्वयं परखने में सक्षम होना चाहिए। तब तक, हमें ऐसी अवैज्ञानिक अफवाहों को गलत साबित करने में अपनी बहुत सारी ऊर्जा खर्च करनी ही होगी।

यहां तक एक तरफ सोशल मीडिया के कई लाभ हैं जैसे यह जानकारी का तेज़ स्रोत है, लोगों को जोड़ता है और शिक्षा व जागरूकता बढ़ाता है। इसके माध्यम से व्यवसाय और प्रतिभा को भी मंच मिलता है। लेकिन दुसरी तरफ इसके गलत प्रयोग की कई हानियां भी हैं जैसे समय की बर्बादी, लत लगना, मानसिक तनाव और गैर वैज्ञानिक जानकारी का फैलाव।

कुछ समह पहले फेसबुक के एक वैज्ञानिक ग्रुप में एक तस्वीर देखी गई थी। जिसमे व्यंग्यात्मक ढंग से पेश किया गया है कि कोई व्यक्ति बिना किसी वैज्ञानिक आधार के अफवाह फैला देता है। इस अवैज्ञानिक अफवाह को फैलाने वाले व्यक्ति की कोई ज्यादा ऊर्जा नहीं लगती, उसे बस कुछ बेमतलब की बात कहनी होती है, जबकि वैज्ञानिक सोच वाला व्यक्ति सबूतों के साथ उस झूठ का खंडन करने में बहुत ऊर्जा लगाता है। वहीं, तर्कहीन बातें करने वाला व्यक्ति तथ्यों को देखने के बाद भी बस यही कहेगा कि मुझे तो ऐसा ही लगता है।

गवेशन समिति ने महिला दिवस के अवसर पर संगोष्ठी का आयोजन किया।

सामाजिक चेतना, पर्यावरण संरक्षण और जाति-मुक्त मानवीय संगठन गवेशन समिति ने 15 मार्च को महिला दिवस के अवसर पर मध्य प्रदेश के सागर शहर के राजघाट स्थित होटल रॉयल पैलेस में एक संगोष्ठी का आयोजन किया। इसमें तर्कशील सोसाइटी कनाडा के नेता बलविंदर बरनाला ने मुख्य वक्ता के रूप में 'भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अंधविश्वास बनाम तर्कशीलता' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने भारत और विश्व के अन्य समाजों में व्याप्त अंधविश्वासों के बारे में विस्तार से बताया और कहा कि अब लोगों में काफी बदलाव आ रहा है। लोग जागरूक हो रहे हैं और धर्म का प्रभुत्व भी कम हो रहा है। आज भी चीन, जापान, रूस, यूरोप, कनाडा, नॉर्वे और ऑस्ट्रेलिया जैसे कई देशों में नास्तिक बहुसंख्यक बन रहे हैं। लेकिन वर्तमान में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान जैसे देश बढ़ते धार्मिक चरमपंथ के कारण विकट परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। भारत में तर्कशील आंदोलन लोगों के लिए आशा की किरण बनकर उभरा है, जो सामाजिक परिवर्तन ला सकता है। उनके व्याख्यान को श्रोताओं से अच्छी प्रतिक्रिया मिली। इस दौरान तर्कशीलता से संबंधित प्रश्नोत्तर सत्र भी आयोजित किया गया। हरचंद भिंडर ने लोगों के सवालों के उत्तर दिए और हाथ की सफाई के करतब भी दिखाए।

इस दौरान, समाज के लिए प्रेरणास्रोत बनीं महिलाएं , जैसे कि आदिवासी समुदाय से ताल्लुक रखने वाली गुड्डी प्रेमरानी, जो लोगों के घरों में काम करती थीं और अपना कपड़ों का व्यवसाय चलाती थीं। सागर केंद्रीय कारागार में शिक्षिका और प्रेरक नाठी देवी ने कई कैदियों को पढ़ाया और उन्हें बेहतर बनाया। इसी तरह, स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉ. रब्बी शार्ला, जिनके लेख राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रों आदि में प्रकाशित हो चुके हैं, को गवेशन समंती द्वारा पदक और प्रमाण पत्र से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर, इस संगठन के प्रमुख मनोहर चौरसिया ने कहा कि जिस दिन महिलाएं अपने परिश्रम का हिसाब मांगेंगी, उस दिन सबसे बड़ा घोटाला पकड़ा जाएगा।

अगले दिन, 16 मार्च को, डॉ. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (मध्य प्रदेश) के डॉ. अंबेडकर उत्कृष्टता केंद्र के प्रमुख डॉ. राजेश गौतम के सहयोग से 'तर्कशीलता' विषय पर एक व्याख्यान का आयोजन किया गया, जिसके मुख्य वक्ता बलविंदर बरनाला थे। इस दौरान, छात्रों ने अच्छी प्रतिक्रिया दी और प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर मुख्य वक्ता ने दिया।

इन सभी कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए बरनाला के पंजाबी ट्रिब्यून के क्षेत्रीय प्रतिनिधि परशोत्तम बल्ली भी हमारे साथ उपस्थित थे। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में मनोहर चौरसिया, प्रोफेसर राजेश गौतम, डॉ. सुनील साहू, डॉ. वसीम अनवर, डॉ. चंदन, डॉ. दिनेश, डॉ. शिवकुमार और डॉ. तरुण आदि का विशेष सहयोग रहा। **रिपोर्ट : हरचंद भिंडर**

उत्तर प्रदेश में शहीद मेले में तर्कशील प्रोग्राम

नौजवान भारत सभा तथा स्त्री मुक्ति लीग की ओर से शहीद भगत सिंह, राजगुरु एवं सुखदेव के शहीदी दिवस के अवसर पर चार दिवसीय शहीद मेला 20 मार्च से 23 मार्च तक गांव नांगल सोती जिला बिजनौर उत्तर प्रदेश में मनाया गया जिसमें 21 मार्च को पूरा समय तर्कशील सोसायटी को प्रोग्राम करने के लिए दिया गया। इस प्रोग्राम में रामकुमार ढकडब्बा ने शाम 7:00 बजे से 9:00 तक जादू के ट्रिक दिखाएं तथा साथ-साथ सोसायटी की ओर से किए जा रहे कार्यों के बारे में जानकारी दी। लोगों को अंधविश्वासों से निकलकर वैज्ञानिक सोच अपनाने के लिए प्रेरित किया ताकि वह ढोंगी बाबो की लूट से बच सकें। लोगों को अपने अच्छे भविष्य के लिए किस्मत पर भरोसा रखने की बजाय शहीदों की ओर से आदर्श गए रास्ते पर चलने का संदेश दिया ताकि शहीदों के सपनों के समाज का निर्माण हो सके। प्रोग्राम के अंत में रात को गौहर रौजा की फिल्म इंनकलाब दिखाई गई। प्रबंधक संस्था ने सोसायटी की 10 हिंदी की पुस्तक अपनी लाइब्रेरी के लिए खरीद लीं। इस प्रोग्राम की सफलता में सत्यम वर्मा, कविता कृष्ण पल्लवी, गीतिका हरिद्वार, मुकेश प्रसाद देहरादून, अपूर्व मालवीय, गणेश कुमार मुंबई, नंदन पांडे (सेवा मुक्त डायरेक्टर स्कूल शिक्षा बोर्ड), कमला पंत का विशेष सहयोग रहा।

रिपोर्ट रामकुमार ढकडब्बा

सहयोगी राष्ट्रीय में अंतरराष्ट्रीय तालमेल विभाग।

तर्कशील विचार गोष्ठी का आयोजन

5 अप्रैल 2026 रविवार को तर्कशील सोसायटी यमुनानगर इकाई द्वारा एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिस का मुख्य विषय आज के संदर्भ में तार्किक सोच के विकास की आवश्यकता रहा। गोष्ठी का संचालन करते हुए अपने स्वागत व्यक्तत्व में राजेश बिंद्रा ने वैज्ञानिक चिंतन और तर्कशील सोच पर हो रहे निरंतर प्रहारों का जिक्र करते हुए कहा कि जिस देश में उच्च पदों पर आसीन सत्ता पक्ष के लोग मिथीहासिक कहानियों को सत्य कह कर विश्व के पहले अंतरिक्ष यात्री भारतीय कह कर प्रचार करते हों और प्राचीन काल में उत्कर्ष शल्य चिकित्सा का उदाहरण स्वरूप मानव सिर पर हाथी के सिर का प्रत्यारोपण के प्रचार करते हों तो निस्संदेह वैज्ञानिक चिंतन के लिए ये बड़ा गंभीर संकट है और इस संकट का मुकाबला और प्रतिरोध करना हर तर्कशील व्यक्ति का कर्तव्य है। प्रो. राकेश शर्मा ने आज के शिक्षा प्रणाली में वैज्ञानिक चिंतन की जरूरत पर बल देते हुए कहा कि मानव तो जन्म से ही जिज्ञासु और वैज्ञानिक चिंतन वाला प्राणी है पर कुछ बेहद स्वार्थी और धूर्त लोगों ने अपने फायदे के लिए मानव के इस प्राकृतिक गुण का विनाश किया। प्रो. राकेश ने कहा कि वैज्ञानिक चिंतन अगर मानवता वादी नहीं है तो वो संपूर्ण विश्व के लिए घातक है। इस संदर्भ में उन्होंने ईरान युद्ध का उदाहरण देते हुए कहा कि विकसित विज्ञान द्वारा उत्पादित अत्याधुनिक हथियारों से आज हजारों बेगुनाह नागरिक, मासूम बच्चे मारे जा रहे हैं। आज ट्रंप MAGA का नारा लगा कर ईश्वर की शपथ ले कर व्हाइट सुपरमेसी को स्थापित करना चाहता है जो तर्कशील चिंतन के मूल सिद्धांतों से कोसो दूर है। मुख्य वक्ता श्री बलबीर सिंह जी ने कहा कि आज धर्म का प्रचार प्रसार वैज्ञानिक चिंतन के सम्मुख एक प्रमुख चुनौती है। कोई भी धर्म अपनी मान्यताओं, परंपराओं और विचारों में बदलावों को तैयार नहीं है हालांकि मनुष्य का विकास और मानवता का इतिहास ही बदलते वक्त के साथ बदलने का है। यहां तक कि हमारे संविधान में भी जरूरत के अनुसार अब तक कई संशोधन हो चुके हैं परंतु धार्मिक ग्रंथों में एक शब्द भी बदलने का साहस धार्मिक लोग नहीं कर सकते उल्टा स्वयं स्थापित धर्म गुरु इन ग्रंथों का सहारा ले कर समाज में अंधविश्वास और सामाजिक विषमता का प्रसार कर रहे हैं। बलबीर जी ने कहा कि वैज्ञानिक चिंतन की पहल हमें सर्वप्रथम अपने घर और आसपास से ही करनी होगी और अधिक से अधिक युवा साथियों और बच्चों में इस का प्रचार करना होगा। उन्होंने कहा कि असली धार्मिक पुस्तक तो हमारा संविधान होना चाहिए जो मानवता और बराबरी का संदेश देता है और सरकारों को समाज में वैज्ञानिक चिंतन को बढ़ावा देने के लिए निर्देशित करता है पर आज इस के ठीक उल्ट हो रहा है और अपने आप को आंबेडकर वादी कहने वाले लोग भी सिर्फ प्रतीकों की राजनीति कर रहे हैं। साथी फकीर चंद ने भी कहा कि तर्कशील सोच को कुचलना भारत के संविधान की रूह का विनाश करना है और ये सब एक एजेंडे के तहत हो रहा है। सभी साथियों ने बड़ी तन्मयता और सक्रियता से इस गोष्ठी में भाग लिया विशेष कर अनुरोध कुमार, सुमितपाल, अनुपम सिंह, एम एस गिल, हरिनारायण, रामतीरथ यादव, रामनाथ बंसल, राहुल भान, ललित चोपड़ा, के. एस. अंसल, शशि गुप्ता, रोशन लाल, चरणजीत मेहरा, सिमरन और हर्षिता। गोष्ठी अत्यंत ज्ञानवर्धक और सफल रही। **रिपोर्ट : गुरमीत अंबाला**

बिना परवाज़ वाला पक्षी

जब कोई पक्षी अपने घोंसले की रक्षा के लिए परवाज़ रोक देता है, तो वह मरता तो नहीं, लेकिन एक ऐसी निष्क्रियता का शिकार हो जाता है जो मृत्यु से भी कहीं अधिक भयानक होती है। बीते कल का प्रतिबिंब मात्र जीवन, एक तरह से धीरे-धीरे आत्महत्या करना है। धीरे-धीरे उसके पंख नीले आकाश को नापना बंद कर देते हैं और घोंसले की तंग जगह में ही मुरझाने लगते हैं, और ये पंख उसके शरीर पर एक बोझ मात्र रह जाते हैं। सूरज की गर्मी से डरकर, वह घोंसले की घनी छाया में लेटे-लेटे अपने रंगीन पंखों को मैला कर लेता है। आकाश से मुंह मोड़ लेने का परिणाम यह होता है कि उसके पंख उड़ने में हिचकिचाने लगते हैं, उड़ने का ख्याल ही उसके मन में भय पैदा करने लगता है, और केवल अपने अस्तित्व को बचाना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है।

ऐसे निष्क्रिय जीवन में, जीवन और मृत्यु के बीच की रेखा मिट जाती है - ठीक वैसे ही जैसे एक शव शमशान घाट में पड़ा हो। वह भूल जाता है कि जो पक्षी उड़ना भूल गया है, वह केवल धूल है, चाहे उसके पंख कितने भी रंगीन क्यों न हों। **-बिन्नी**

जनार्दन ब्रूनो की शहादत

–गुरमीत अंबाला

आज से 426 वर्ष पहले, अपने विश्वासों के लिए कुर्बान होने वाले महान वैज्ञानिक, साहसी क्रान्तिकारी, जर्दानो ब्रूनो को रोम में प्राणदण्ड दिया गया था।

प्राणदण्ड देने का 'न्यायालय' का निर्णय सुनकर, ब्रूनो ने 'इन्क्विज़ितरों' से शान्तिपूर्वक कहा था – ''आप दण्ड देने वाले हैं और मैं अपराधी हूँ, मगर अजीब बात है कि कृपासिन्धु भगवान के नाम पर अपना फ़ैसला सुनाते हुए आपका हृदय मुझसे कहीं अधिक डर रहा है।''

'इन्क्विज़िशन' की यह प्रथा थी कि वह अपना निर्णय इन पाखण्ड भरे शब्दों में सुनाता था – ''पवित्र धर्म इस अपराधी को बिना खून बहाये मृत्युदण्ड देने की प्रार्थना करता है।'' किन्तु वास्तव में इसका अर्थ होता था भयानक मृत्युदण्ड – यानी जीवित ही जला देना।

... ...



ब्रूनो जीवन भर कॉपरनिकस के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए संघर्ष करता रहा। ब्रूनो ने कॉपरनिकस के सिद्धान्तों को, एक परिश्रमी तथा भीरु शिष्य की भाँति दुहराया ही नहीं, बल्कि उन्हें और भी अधिक विस्तृत किया। स्वयं कॉपरनिकस की तुलना में उसने संसार को कहीं अधिक अच्छी तरह समझा।

जर्दानो ब्रूनो ने बताया कि न केवल पृथ्वी ही, बल्कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। ब्रूनो की मृत्यु के बहुत वर्षों बाद ही यह तथ्य प्रमाणित हुआ।

ब्रूनो ने बताया कि बहुत–से ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और यह कि मनुष्य नये तथा अभी तक अनजाने कई अन्य ग्रहों का भी पता लगा सकता है। उसकी यह बात सच भी निकली। ब्रूनो की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्ष बाद ऐसे अनजाने ग्रहों में सबसे पहले यूरेनस का, और कुछ समय बाद, नेप्चून और प्लूटो ग्रहों का तथा दूसरे सैकड़ों छोटे–छोटे ग्रहों का पता लगा। इन्हें एस्टेरॉयड कहते हैं। इस प्रकार इस प्रतिभाशाली इतालवी की भविष्यवाणी सोलह आने सच साबित हुई।

कॉपरनिकस दूर के तारों की ओर कम ध्यान देता था। परन्तु ब्रूनो ने निश्चय के साथ कहा कि हर तारा हमारे सूर्य जैसा ही विशाल सूर्य है। उसने यह भी कहा कि ग्रह हर तारे के चारों ओर घूमते हैं। हम केवल उन्हें देख नहीं पाते हैं, क्योंकि वे हमसे बहुत ही दूर हैं। ब्रूनो ने यह भी कहा कि हर एक तारा अपने ग्रहों के साथ एक वैसा ही विश्व है, जैसा कि हमारा सौर जगत, और ब्रह्माण्ड में ऐसे विश्वों की संख्या अनन्त है।

जर्दानो ब्रूनो ने बताया कि ब्रह्माण्ड के सभी संसारों की अपनी स्वयं की उत्पत्ति और अपना स्वयं का अन्त है और वे बराबर बदलते रहते हैं। यह विचार बहुत ही साहसपूर्ण था, क्योंकि ईसाई धर्म के अनुसार तो संसार अपरिवर्तनशील है और वह सदा वैसा ही बना रहता है जैसा कि ईश्वर ने इसे बनाया है।

ब्रूनो बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसने अपने बुद्धिबल द्वारा ही वह बात समझी जिसे खगोलविज्ञानी बाद में दूरबीनों और टेलीस्कोपों की सहायता से जान पाये। आज हमारे लिए यह अनुमान लगाना भी कठिन है कि ब्रूनो ने खगोलविज्ञान में कितनी बड़ी क्रान्ति कर दी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने किसी बन्दी को कारावास से बाहर निकालकर उसे तंग व अँधेरी कोठरी की जगह एक विचित्र व अनन्त संसार का सुन्दर दृश्य दिखाया था।

ब्रूनो के कुछ समय बाद एक अन्य खगोलविज्ञानी केपलर ने यह स्वीकार किया कि इस महान व प्रसिद्ध इतालवी वैज्ञानिक की कृतियाँ पढ़कर उसका सिर चकराने लगता था। इस कल्पना से कि शायद वह इस अन्तरिक्ष में निराधार घूमता रहता है, कि इसका न कोई केन्द्र और न कोई आरम्भ और अन्त ही है, वह एक गुप्त आतंक से आतंकित हो उठता था।

पादरी जर्दानो ब्रूनो को अपना जानी दुश्मन मानने लगे। ब्रूनो के ये सिद्धान्त कि बसे हुए संसारों की संख्या अनन्त है, और ब्रह्माण्ड का कोई आरम्भ और कोई अन्त नहीं है, विश्व की

सृष्टि के विषय में तथा पृथ्वी पर ईसा मसीह के आने के विषय में 'बाइबल' के कथनों को मटियामेट करने के लिए काफ़ी थे। 'बाइबल' के यही कथन तो ईसाई धर्म के आधार-स्तम्भ थे। पादरियों ने ब्रूनो के विरुद्ध जो अभियोग-पत्र तैयार किये उनमें पूरे एक सौ तीस पैराग्राफ़ थे।

पादरियों ने इस महान वैज्ञानिक को ''ईश्वर को गाली देने वाला'' कहा और वे बराबर प्रयत्न करते रहे कि सभी जगहों के शासक ब्रूनो को अपने देशों से निकाल दें। किन्तु ब्रूनो जितना ही अधिक मारा-मारा फिरता रहा, उतना ही अधिक वह अपने साहसपूर्ण सिद्धान्तों का प्रचार भी करता रहा।

स्वदेश से अलग किया हुआ ब्रूनो अपने खिली धूप के देश इटली के लिए बराबर आतुर रहता था। उसे मार डालने के लिए उसके दुश्मनों ने ब्रूनो की इस देश प्रेम की भावना से लाभ उठाया।

कुलीन तथा नवयुवक इतालवी जियोवानी मोचेनीगो ने यह ढोंग रचा कि उसे ब्रूनो की उन अनगिनत कृतियों में विशेष रुचि है जो यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों में छप चुकी हैं। उसने ब्रूनो को लिखा कि वह उसका शिष्य बनना चाहता है और यह भी कहा कि बदले में वह उसे उदारतापूर्वक पुरस्कृत करेगा।

निर्वासित ब्रूनो के लिए स्वदेश लौटना बहुत ख़तरनाक था, किन्तु मोचेनीगो ने कपटपूर्वक उसे आश्वासन दिलाया कि वह अपने शिक्षक को बैरियों से बचा लेगा। ब्रूनो विदेशों में भटक-भटककर ऊब चुका था। उसने कपटी मोचेनीगो पर विश्वास कर लिया।

महान वैज्ञानिक यह न जानता था कि उसे धोखा देकर इटली में वापस बुलाने की यह नीच योजना कैथोलिक चर्च के 'न्यायालय' द्वारा बनायी गयी है। स्पेन और इटली में 'इन्क्विज़िशन' नामक भयानक न्यायालय था। यह धर्म का विरोध करने वालों पर अत्याचार करता था। 'इन्क्विज़ितरों' ने, अर्थात् उपरोक्त संस्था के न्यायाधीशों ने, इस संस्था के अस्तित्व काल में लाखों बेगुनाहों की जान ली थी। ब्रूनो भी इसका एक ऐसा ही बेगुनाह शिकार हुआ।

जर्दानो ब्रूनो इटली के वेनिस नगर में पहुँचा और मोचेनीगो को पढ़ाने लगा। मोचेनीगो ने वैज्ञानिक से यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि जाने का विचार बना लेने पर वह मोचेनीगो से विदा अवश्य लेगा। यह भी एक चाल थी। मोचेनीगो को यह भय था कि यदि कहीं ब्रूनो को 'इन्क्विज़िशन' की योजना का पता चल गया तो फिर वह अपनी युवावस्था की भाँति, अवश्य ही चुपके से भाग खड़ा होगा। परन्तु यदि खगोलविज्ञानी उससे विदा लेने आया तो फिर उसे रोकना मुश्किल न होगा।

कुछ महीनों की शिक्षा के बाद मोचेनीगो ने कहा कि ब्रूनो उसे ठीक ढंग से नहीं पढ़ाता है और यह कि वह उससे अपने भेद छिपाता है।

इस आरोप के उत्तर में ब्रूनो ने वेनिस छोड़ देने का निश्चय किया, और मोचेनीगो ने इसकी सूचना 'इन्क्विज़िशन' को दे दी। 23 मई सन् 1592 को इस विख्यात वैज्ञानिक को जेल में डाल दिया गया। उसने जेल में यातनापूर्ण आठ वर्ष बिताये।

वह कोठरी, जिसमें ब्रूनो को रखा गया था, जेल की सीसे की छत के नीचे थी। ऐसी छत के नीचे गर्मियों में असह्य गर्मी और उमस तथा जाड़ों में नमी और ठण्ड रहती। ऐसी कोठरी में बन्दी का जीवन भयानक तथा यातनापूर्ण था – यह तो जैसे तड़पा-तड़पाकर मारने वाली बात थी।

हत्यारों ने ब्रूनो को आठ वर्षों तक जेल में क्यों बन्द रखा? इसलिए कि उन्हें आशा थी कि वे इस खगोलविज्ञानी को अपने सिद्धान्त त्याग देने के लिए बाध्य कर सकेंगे। यदि ऐसा हो जाता, तो यह उन सबके लिए एक बड़ी विजय होती। पूरा यूरोप इस विख्यात वैज्ञानिक को जानता था और उसका आदर करता था। यदि ब्रूनो यह घोषणा कर देता कि वह ग़लती पर था और पादरी लोग ठीक थे, तो बहुत-से लोग फिर से विश्व की सृष्टि के विषय में धर्म के कथनों पर विश्वास करने लगते।

किन्तु जर्दानो ब्रूनो चट्टान की तरह दृढ़ और साहसी व्यक्ति था। पादरी न तो धमकियों और न ही यन्त्रणाओं द्वारा ब्रूनो को विचलित कर पाये। वह दृढ़ता से अपने विचारों की सत्यता को सिद्ध करता रहा।

अन्त में हत्यारों ने उसे प्राणदण्ड देने का निर्णय सुनाया। 'न्यायालय' का निर्णय सुनकर ब्रूनो ने 'इन्क्विज़ितरों' से शान्तिपूर्वक कहा – ''आप दण्ड देने वाले हैं और मैं अपराधी हूँ, मगर अजीब बात है कि कृपासिन्धु भगवान के नाम पर अपना फ़ैसला सुनाते हुए आपका हृदय मुझसे कहीं अधिक डर रहा है।''

('अनुराग ट्रस्ट' से प्रकाशित अ. वोल्कोव की पुस्तक 'धरती और आकाश' से)

क्या एक दिन पुस्तक मर जाएगी?

–जसवंत मोहाली

मैं शहीद भगत सिंह लाइब्रेरी (मोहाली) में बैठा था। आठवीं कक्षा का एक विद्यार्थी किताब लेने आया। उससे बातचीत हुई तो वह अपनी उम्र से बड़ा और समझदार लगा। उसकी कही एक बात ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया। वह कहता था, ''अंकल, आजकल लाइब्रेरी कौन खोलता है? अब किताबें पढ़ने का नहीं, वीडियो देखकर सीखने का ज़माना है।'' उसका मतलब था कि किताब पढ़ने की बजाय अगर वही शिक्षा वीडियो के माध्यम से दी जाए तो अधिक प्रभावशाली होगी।

मैंने बड़ों की तरह पहले तो उसे किताबों के महत्व के बारे में कुछ तर्क दिए, लेकिन अंदर ही अंदर बाद में खुद भी सोचता रहा–क्या किताबें पढ़कर, कॉपियों पर लिखकर सीखने की बजाय वीडियो देखकर सीखना अधिक प्रभावशाली होगा ? क्या भविष्य में आज की शिक्षा का विकल्प विषय से संबंधित वीडियो दिखाकर पढ़ाना होगा ?

सीखने के लिए किताब पढ़ने के साथ-साथ वीडियो दिखाकर किसी कॉन्सेप्ट या विषय की अच्छी समझ हासिल की जा सकती है और बच्चों को वीडियो के माध्यम से पढ़ना दिलचस्प भी लगेगा। लेकिन शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि विषय को समझाना है। उस समझ को परीक्षा देकर साबित भी करना पड़ता है। इसलिए केवल वीडियो देखना उतना लाभदायक नहीं है। पढ़ते समय बच्चे शब्द-शब्द, वाक्य-वाक्य पढ़ते हैं, तो पढ़ने में लगने वाले समय के दौरान लिखी हुई बात उनकी समझ और याद का हिस्सा बन जाती है। दूसरा, किताब में महत्वपूर्ण बातों को मार्क किया जा सकता है, लेकिन वीडियो में यह उतना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं।

इसी से जुड़ा एक और सवाल, जो साहित्य से जुड़े लोगों में अक्सर चर्चा का विषय होता है–क्या सोशल मीडिया के कारण अब किताबें पढ़ने का चलन कम हो रहा है? एक दिन एक लेखक/प्रकाशक से बात हुई, जिनका किताबें छापने में काफी नाम है। वे कहने लगे कि किताब का कोई भविष्य नहीं है, एक दिन किताब मर जाएगी। जिस व्यक्ति ने लगभग पूरी जिंदगी किताबें छापने में बिताई हो, उसका ऐसा कहना नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

लेकिन जब एक बड़े पुस्तक विक्रेता से बात हुई, तो उनका कहना था कि कम से कम पंजाब में आज के समय में पहले की तुलना में ज्यादा किताबें बिक रही हैं। उन्होंने जीवन में कई काम किए, लेकिन अंत में किताबें बेचने का काम अपनाकर उन्होंने अपना घर भी बनाया और बच्चों को भी पढ़ाया। पिछले कुछ वर्षों से पंजाब में लगने वाले पुस्तक मेलों में कुल मिलाकर एक से डेढ़ करोड़ रुपये तक की किताबें बिक जाती हैं और अधिकांश प्रकाशक तथा विक्रेता इस व्यवसाय से निराश नहीं हैं। यह भी देखा गया है कि सोशल मीडिया पर हुई चर्चा भी किताबों की बिक्री बढ़ाने में मदद करती है। जैसे एक इंटरव्यू के दौरान राणा रणबीर ने ''मेरा दागिस्तान'' किताब का जक्रि किया, तो प्रकाशकों को उसकी मांग पूरी करने के लिए नए संस्करण निकालने पड़े।

भले ही अब बहुत सी किताबें प्रिंट के साथ-साथ ई-बुक/किंडल के रूप में ऑनलाइन उपलब्ध हैं, लेकिन अभी भी बड़ा बाजार छपी हुई किताबों का ही है। दूसरे देश से किताब मंगवाना या भेजना महंगा पड़ता है, इसलिए ई-बुक एक अच्छा विकल्प है। फिर भी छपी हुई किताब पढ़ने का अपना अलग आनंद है।

हालांकि किताबों के डिजिटल होने की संभावना है, लेकिन किताब का विकल्प वीडियो नहीं हो सकता। वैसे भी कोई भी फिल्म या वीडियो सीधे स्क्रीन पर नहीं आता, उससे पहले उसकी पटकथा, कहानी और संवाद लिखे जाते हैं। इसलिए किताब कभी मर नहीं सकती, क्योंकि इंसान के भीतर उठने वाली भावनाएं नहीं मर सकतीं, कविता लिखने की चाह खत्म नहीं हो सकती, और उसकी कल्पना की असीम उड़ानें नहीं रुक सकतीं–जिनसे साहित्य की रचना होती है।

केरल के बस अड्डा पुस्तकालय

केरल भारत का एक ऐसा राज्य है जो अपनी उच्च साक्षरता दर और पठन संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। लोगों में पढ़ने की आदत को और मजबूत करने के लिए, यहाँ एक नई और प्रेरणादायक पहल की गई है - बस स्टैंडों पर पुस्तकालयों की स्थापना। यह प्रयास यात्रियों के प्रतीक्षा समय को उपयोगी बनाने और पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया है।

केरल राज्य सड़क परिवहन निगम (केएसआरटीसी) और स्थानीय प्रशासन ने इस योजना को शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बस स्टैंडों के प्रतीक्षा कक्षों में छोटे-छोटे "पुस्तकालय काउंटर" स्थापित किए गए, जहाँ यात्री नि:शुल्क पुस्तकें पढ़ सकते थे। कुछ स्थानों पर ऐसी सुविधा भी है जहाँ पाठक पुस्तक को घर ले जा सकते हैं और निर्धारित समय के भीतर वापस कर सकते हैं।

इन पुस्तकालयों में मलयालम, अंग्रेजी और कभी-कभी हिंदी जैसी विभिन्न भाषाओं की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनमें उपन्यास, कविताएँ, बच्चों का साहित्य, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों पर पुस्तकें शामिल हैं। इससे सभी आयु वर्ग के यात्रियों को अपनी रुचि के अनुसार पढ़ने का अवसर मिलता है।

तिरुवनंतपुरम, कोच्चि और कोझिकोड जैसे शहरों के बस स्टेशनों पर यह प्रयोग काफी सफल रहा है। यात्रियों को मोबाइल फोन के बजाय किताबों के साथ समय बिताते हुए देखा जा रहा है, जिससे एक सकारात्मक और शैक्षिक वातावरण बन रहा है।

इस पहल के अनेक सामाजिक और शैक्षिक लाभ हैं। पहला, यह लोगों में पढ़ने की आदत को मजबूत करता है। दूसरा, यह सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ाता है। तीसरा, यह सार्वजनिक स्थानों को केवल यात्रा केंद्र नहीं, बल्कि सीखने और चर्चा के केंद्र बनाता है। यह विशेष रूप से बच्चों और युवाओं के लिए प्रेरणादायक साबित होता है।

केरल की यह पहल अन्य राज्यों के लिए भी एक मिसाल है। अगर दूसरे राज्य भी बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर इस तरह के पुस्तकालय बनवाएं, तो राष्ट्रीय स्तर पर पठन-पाठन की संस्कृति को मजबूत किया जा सकता है। इससे युवा पीढ़ी ज्ञान से जुड़ सकेगी और समाज में सकारात्मक बदलाव ला सकेगी।

अंत में, केरल के बस अड्डा पुस्तकालय केवल पुस्तकों का संग्रह नहीं हैं, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और सामाजिक जागरूकता का जीवंत उदाहरण हैं। यह पहल साबित करती है कि यदि इच्छाशक्ति हो, तो हर सार्वजनिक स्थान को ज्ञान का केंद्र बनाया जा सकता है।





तर्कशील सोसायटी पंजाब का वार्षिक सम्मेलन 26-04-2026 को तर्कशील भवन बरनाला में आयोजित किया गया। इसमें पंजाब भर से सौ से अधिक तर्कशील प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस समारोह में तर्कशील सोसायटी के अलग-अलग विभागों के प्रमुखों ने अपनी-अपनी कारगुजारी की रिपोर्ट पेश की। विचार - चर्चा के पश्चात तर्कशील सोसायटी में युवाओं और महिलाओं की संख्या को और बढ़ाने के लिए एक रूपरेखा तैयार की गई।





तर्कशील सम्मेलन को संबोधित करते हुए श्री राजिंदर भदौड़ (राज्य संगठनात्मक प्रमुख) और श्री राजपाल सिंह (मुख्य संपादक तर्कशील पंजाबी)



वार्षिक सम्मेलन में हाजिर तर्कशील प्रतिनिधि

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....